परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2014
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

विषय सूची

आलेख

रजनी रंजन सिंह एवं **हेमन्त नामदेव**
भारत में समावेशी शिक्षा की दशा और दिशा 1

सरिता चौधरी
बाल अधिकारों के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति 19

ऋषभ कुमार मिश्र
बच्चों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता और दायित्व के विकास में विद्यालय का योगदान 39

बीरेन्द्र सिंह रावत
भाषा की प्रकृति और समझ का रिश्ता 51

मनोज कुमार राय
महात्मा गांधी की नई तालीम का समाजशास्त्र 77

शोध टिप्पणी / संवाद

अमरदीप कुमार
उच्च शिक्षा की पहुँच में बाधाएं और समता के असवर बिहार के महादलितों का केस अध्ययन 85

मोनू सिंह गुर्जर
माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता को प्रभावित करने वाले कारक 101

मधु माथुर एवं **आफताब जाक़रा सिद्दीकी**
बाल-श्रमिकों की शैक्षिक समस्याएं 109
सीतापुर जनपद के बाल-श्रमिकों का केस अध्ययन

चिंतक और चिंतन

दामोदर जैन
एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीन दयाल उपाध्याय का शिक्षा दर्शन 121

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

भारत में समावेशी शिक्षा की दशा और दिशा

रजनी रंजन सिंह* एवं **हेमन्त नामदेव***

सारांश

शिक्षा को व्यक्ति की दक्षता बढ़ाने का ही साधन नहीं माना जाता है बल्कि लोकतंत्र में सक्रिय भागीदारी निभाने और अपने सामाजिक जीवन-स्तर में सुधार के लिए भी शिक्षा आवश्यक है। इसलिए सरकार शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए प्रयासरत है। देश में व्याप्त शैक्षिक असंतुलन को दूर करने के लिए संविधान संशोधन कर शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल किया गया। शैक्षिक नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए सरकार ने विभिन्न नीतियों और योजनाओं को लागू करने के साथ ही अनेक शैक्षिक संस्थानों और परिष्दों की स्थापना की। भारत में शिक्षा में एकरूपता लाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने के लिए तथा प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए प्रत्येक क्षेत्र व भाग में विद्यालयों की स्थापना की। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भी शिक्षा हेतु अनेक प्रावधान किये गए है। परन्तु आज समावेशी शिक्षा को लागू करने में अनेक बाधाओं और चुनौतियां का सामना करना पड़ रहा है परन्तु इस हेतु प्रयास अनवरत जारी है क्योंकि इससे मिलने वाले लाभ ज्यादा महत्वपूर्ण है। आज शिक्षा, रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा के साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी सुधार करने की जरूरत है। साक्षर भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सभी वर्गों के लोगों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए शिक्षा में समावेशन आज की महती आवश्यकता है।

प्रस्तावना

शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक बच्चे का अधिकार है। अतः भारत में संविधान के 86वें संशोधन द्वारा वर्ष 2002 में शिक्षा को मौलिक अधिकारों में शामिल किया गया क्योंकि

**सह आचार्य, शिक्षा विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)
*शोधार्थी, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

शिक्षा के आधार पर ही बच्चा अपने जीवन की विभिन्न चुनौतियों को स्वीकार करने की क्षमता प्राप्त करता है। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी यह सुनिश्चित किया गया कि 21वीं सदी में प्रवेश करने से पहले 14 साल तक के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जायेगी। अत: सरकार ने वर्ष 2009 में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम पारित किया जिसके फलस्वरूप 6 से 14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा का अधिकार प्राप्त हो गया है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी विकलांग या गैर विकलांग बच्चे को शिक्षा से वंचित न किया जाए। अगर बच्चा विकलांग है तो सामान्य विद्यालय जिनका संचालन सरकार करती है या सरकारी सहायता प्राप्त अथवा निजी संस्थाओं द्वारा संचालित विशेष विद्यालयों में अथवा सामान्य विद्यालयों में विशेष कक्षा कक्ष एवं आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करके तथा आवासीय विद्यालय और गृह आधारित दिशा-निर्देश से शिक्षा प्रदान की जाये। भारत में विश्व की सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली के कार्यरत होने के बाद भी 5 प्रतिशत से भी कम नि:शक्त बच्चों को विद्यालयों में प्रवेश मिल पाता है जबकि 20 प्रतिशत नि:शक्त बच्चे नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के तीन साल भी पूर्ण नहीं कर पाते हैं। अत: आज शिक्षण प्रक्रिया में विकलांग बच्चों को अवरोधहीन वातावरण में उचित शिक्षा तथा सामाजिक सामान्यीकरण के साथ मुख्यधारा में शामिल करने हेतु प्रेरित किये जाने की महती आवश्यकता है।

शिक्षा के विभिन्न प्रकार

नि:शक्त बच्चों की शिक्षा हेतु विभिन्न विकल्प इस प्रकार हैं:

1. **अनौपचारिक शिक्षा–** मुक्त शिक्षा जिसमें विद्यालयीन प्रतिबंध नहीं होते हैं- जैसे पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, स्थान, समय-तालिका, परीक्षा आदि।
2. **नियमित शिक्षा**- प्राथमिक, माध्यमिक स्तर एवं उच्च माध्यमिक स्तर की नियमित शिक्षा जिसमें पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, निर्धारित स्थान, समय-तालिका, परीक्षा प्रविधि का पालन किया जाता है ।
3. **एकीकृत शिक्षा–** वह शिक्षा जिसमें विशेष और नियमित शिक्षा को आपस में मिला कर एक समान कर दिया जाता है।
4. **विशेष शिक्षा–** वह शिक्षा जो नि:शक्त बच्चों को उनकी आवश्यकता के अनुसार

प्रदान की जाती है।

5. **समावेशी शिक्षा–** वह शिक्षा जिसमें विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यार्थियों के साथ समान रूप से सभी शैक्षिक गतिविधियों में सम्मिलित करके शैक्षिक अवसर व सुविधाएं उपलब्ध कराना उसके साथ ही नियमित विद्यालयों में आवश्यक व अतिरिक्त सेवा सहायता द्वारा नि:शक्त बच्चों को शिक्षा प्रदान करना।

समावेशी शिक्षा का इतिहास एवं उसकी भूमिका

भारत में समावेशी शिक्षा विभिन्न विकलांगता ग्रस्त बच्चों की शिक्षा के लिए एक नवीन उभरती अवधारणा है। यह अवधारणा अनेक परिवर्तनों जैसे– समेकित शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा के बाद एक नए स्तर पर पहुँच चुकी है। समावेशी शिक्षा विभिन्न विकलांगता युक्त बच्चों के लिए शिक्षा की एक नई खोजपूर्ण प्रणाली है जिसमें अनेक परीक्षणों और परिवर्तनों के बाद पुरानी प्रणाली में परिवर्तन किये गए हैं। बीते कुछ वर्षों में समावेशी शिक्षा में तेजी से वृद्धि हुयी है।

भारत में विकलांग लोगों के लिए शिक्षा का इतिहास एक बदलते स्वरूप में उभरता दिखाई देता है और शिक्षा के विशिष्ट आयाम में से एक है समावेशी शिक्षा। भारत में समावेशित शिक्षा 21वीं शताब्दी में उभर कर सामने आ रही है। इस शिक्षा को आरंभ से ही अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। इसके साथ ही समावेशी शिक्षा के पूर्व अनेक कानूनी और नीतिगत दौर भी आये जिनमें समय के साथ परिवर्तन होता रहा और जिसके फलस्वरूप विकलांगों के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होता रहा है।

भारत में विकलांगों से सम्बंधित कानूनी प्रावधानों के इतिहास का प्रारम्भ वर्ष 1944 में सार्जेंट रिपोर्ट से माना जाता है जिसमें यह कहा गया था कि विकलांगता यदि विशेष विद्यालय के अनुकूल है तभी विकलांग व्यक्तियों को विशेष विद्यालय में भेजा जाना चाहिए। इसी बात पर कोठारी आयोग (1966–68)ने भी जोर दिया और विकलांग लोगों की शिक्षा को शिक्षा नीति का एक अभिन्न अंग माना। भारत में समावेशी शिक्षा की शुरुआत के लिए 'विकलांगों के लिए समेकित शिक्षा' योजना 1970 के दशक में प्रारम्भ की गयी, जिसका उद्देश्य विकलांग बच्चों को सामान्य विद्यालय में शामिल करना व शैक्षिक अवसर प्रदान करने के साथ ही साथ सभी स्तर पर उन्हें समुदाय से जोड़ना था। इसके बाद अनेक योजनाएं प्रारम्भ की गयीं परन्तु समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में वर्ष 2000

महत्वपूर्ण है जब एन.सी.ई.आर.टी. ने 'विद्यालयी राष्ट्रीय शिक्षा की रूपरेखा 2000' प्रकाशित किया, जिसमें समावेशी विद्यालयों को मंजूरी दी गयी परन्तु 'आई.सी.डी.सी. ' योजना के परिणाम अनुकूल न होने से समावेशी शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। भारत में समावेशी शिक्षा के लिए 'सलमानका सम्मलेन' 1994 मिल का पत्थर साबित हुआ जो जून 1994 में स्पेन के सलमानका शहर में आयोजित हुआ जिसमें 92 देशों के प्रतिनिधि व 25 अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने भाग लिया। इस सम्मलेन का प्रमुख निर्णय था– 'सभी के लिए शिक्षा, जिसमें बच्चे, युवा और विशेष आवश्यकता वाले लोगों को सामान्य शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा प्रदान करना।'

समावेशी शिक्षा के प्रमुख लक्ष्य

- नि:शक्त एवं विकलांग बच्चों को बिना किसी भेदभाव के विद्यालय में उचित स्थान प्रदान करना।
- नि:शक्त एवं विकलांग बच्चों को विद्यालय में शिक्षण का समुचित माहौल प्रदान करना ।
- नि:शक्त एवं विकलांग बच्चों में आवश्यक क्षमताएं विकसित करना ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें।
- नि:शक्त एवं विकलांग बच्चों के प्रति समाज में सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना।
- समावेशी शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर लोगों में समावेशी शिक्षा के प्रति जागृति लाना।

समावेशी शिक्षा एवं उसके लिए योजनाएं

समावेशी शिक्षा प्राथमिक तौर पर स्कूली संस्कृति, नीतियों और व्यवहारों का नाम है, जो स्थान विशेष के विविधतापूर्ण छात्रों से सीधे जुड़ी है। समावेशी शिक्षा छात्रों की भागीदारी की निरंतरता को सशक्त बनाने का अभियान है, जिसमें नि:शक्त बच्चे भी शामिल हैं।

'समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है, बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अन्त:क्रिया

करना भी समानरूप से है।' (एन.सी.एफ.2005, पृष्ठ 96)

केंद्र और राज्य सरकार की विभिन्न योजनाएं

भारत सरकार ने भी नि:शक्त व्यक्तियों के समान अधिकार तथा शिक्षा और समावेशीकरण एवं पुनर्वास हेतु मानव संसाधन विकास मंत्रालय, सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय, परिवार कल्याण एवं श्रम मंत्रालय के अधीन अनेक योजनाओं एवं नीतियों का क्रियान्वयन किया है, जैसे- 1974 में समेकित बाल विकास योजना, 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1994 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में यह सुनिश्चित किया गया कि 14 साल तक के सभी बच्चों को गुणवत्तायुक्त, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जायेगी। इसी क्रम में 1995 में विकलांग जन (समान अवसर, अधिकारों की रक्षा और पूर्ण भागीदारी) कानून (PWD Act), 1999 में राष्ट्रीय न्यास (आटिज्म, सेरेब्रल पाल्सी, मानसिक मंदता तथा बहु-नि:शक्तता से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याण हेतु) अधिनियम पारित कर विकलांगों की शिक्षा हेतु प्रयास प्रारम्भ किय गए। पुन: सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण एवं सभी के लिए शिक्षा के उद्देश्य को लेकर वर्ष 2000 में सर्व शिक्षा अभियान प्रारम्भ किया जिसमें किसी भी बच्चे को प्रवेश न देने की शून्य बहिष्कार नीति को अपनाया और इसी कड़ी में भारत सरकार ने 30 मार्च 2007 को यूएन कन्वेंसन ऑन द् राइट्स ऑफ पर्सन्स विद डिसएबिलिटी पर हस्ताक्षर किये और नि:शक्त बच्चों सहित सभी को समान अवसर देने के संकल्प को दोहराया। वर्ष 2009 में प्राथमिक शिक्षा हेतु नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम एवं माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान प्रारम्भ किया। इसके साथ ही अन्य योजनाएं जैसे- विकलांगों के लिये समेकित शिक्षा, ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, महिला समाख्या योजना, कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना, मध्याह्न भोजन योजना, लोक जुम्बिश परियोजना आदि को लागू किया गया।

समावेशी शिक्षा की दशा

भारत में समावेशी शिक्षा के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाओं और क्रियाओं को लागू किया गया परन्तु आज भी विकलांगता से ग्रस्त जनसंख्या के एक बड़े भाग को समाज की मुख्यधारा से जोड़ा नहीं जा सका। लाखों विकलांग बच्चे अभी भी विशेष विद्यालयों में अध्ययन करते हैं जिन्हें इन विद्यालयों में प्रवेश नहीं मिलता है, ऐसे बच्चे या तो पढ़ते नहीं हैं या विभिन्न कारणों से बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। वर्ष 2011 की जनगणनानुसार

तालिका-1
भारत में विकलांगता ग्रस्त व्यक्तियों की कुल संख्या

आयु	कुल विकलांग	दृष्टि बाधित	श्रवण बाधित	मानसिक मंदता	गति विकलांगता	भाषा विकलांगता	मानसिक रोगी	अन्य	विविध विकलांगता
0 से 90 वर्ष या अधिक	2,68,10,557	50,32,463	50,71,007	15,05,624	54,36,604	19,98,535	7,22,826	49,27,011	21,16,487

स्रोत: तालिका सी-20: आयु वर्ग और विकलांगता के प्रकार के अनुसार व्यक्तियों की संख्या, जनगणना 2011, भारत

तालिका-1 के आंकड़ों का रेखाचित्रीय प्रदर्शन

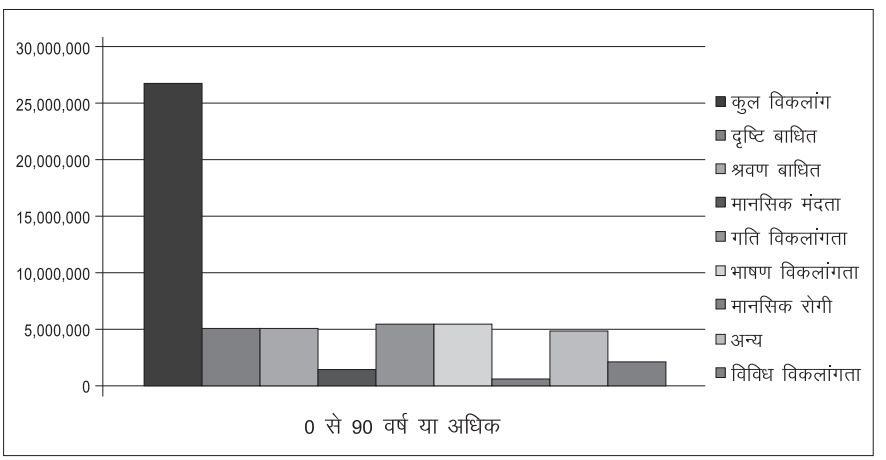

भारत में 0 से 90 आयु वर्ग के विकलांग व्यक्तियों की कुल संख्या 2,68,10,557 है जो विभिन्न विकलांगता से ग्रस्त हैं। इसे तालिका-1 एवं रेखाचित्र की सहायता से दर्शाया गया है।

समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को पूर्ण रूप से प्राप्त करने की दिशा में अनेक कारकों का विपरीत प्रभाव रहा है साथ ही समावेशन की प्रक्रिया को अनेक चुनौतियों और

बाधाओं का सामना भी करना पड़ रहा है जो निम्न प्रकार से हैं।

समावेशन की प्रक्रिया में बाधा पहुँचाने वाले प्रमुख कारक

- **बहुपरती शिक्षा प्रणाली :** हमारी शिक्षा प्रक्रिया समावेशन के बजाय बहिष्करण (Exclusion) को बढ़ावा देती है, भेदभावपूर्ण एवं असमानता पर आधारित शिक्षा प्रणाली बच्चों के समावेशन मे किसी प्रकार की कोई मदद नहीं करती है।

- **दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली :** हमारी शिक्षा में परीक्षा प्रणाली को एक सशक्त औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है। परीक्षा में असफलता के लिए बच्चों ही पूरी तरह से जिम्मेदार ठहराया जाता है जबकि सीखने-सिखाने के तौर तरीके, शिक्षण-अधिगम सामग्री, शिक्षण विधियों एवं विद्यालय के माहौल की सामूहिक रूप से समान जिम्मेदारी होनी चाहिए। एक और जहाँ परीक्षा प्रधान शिक्षा प्रणाली बच्चों को बाहर धकेलने का करती है दूसरी और परीक्षा के भय एवं असफलता से बड़ी संख्या में बच्चे शिक्षा तंत्र से बाहर हो जाते हैं। इस प्रकार से वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली शिक्षा के समावेशन में बाधा पहुँचाती है।

- **विद्यालय तक पहुँच :** विगत दो दशकों में बहुत बड़ी संख्या में प्रारम्भिक स्तर के विद्यालय खोले गए हैं। विशेषकर सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत 1 किमी0 की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय एवं 2 किमी0 की दूरी पर उच्च प्राथमिक विद्यालय संचालित करने का लक्ष्य काफी हद तक प्राप्त कर लेने के दावे किए गए हैं परन्तु जब तक सुदूर एवं दुर्गम ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालय तक पहुँचने के जोखिम कम नहीं किये जायेंगें तब तक शिक्षा प्रणाली में बच्चों के समावेशन के लक्ष्य को पाना सम्भव नहीं हो सकेगा।

- **विद्यालयी पाठ्यचर्या :** विद्यालयी पाठ्यचर्या के साथ ही उसकी कार्यप्रणाली आज भी परम्परागत स्वरूप में ही है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 में पाठ्यचर्या निर्धारण संबंधी अनेक बातें हैं, परन्तु उसमें अभी भी कुछ गम्भीर खामियां है इसलिए बच्चा ज्ञान प्राप्ति की इस प्रक्रिया से जुड़ नहीं पाता है और सूचनाओं के संग्रहण एवं रटन्त प्रणाली का हिस्सा बनकर रह जाता हैं।

- **बच्चे की अस्मिता के प्रति शिक्षक का नजरिया :** बच्चे के समाज, संस्कृति, परिवेश के प्रति जब शिक्षक संवेदनशील नहीं हैं, बच्चे के नजरिए का सम्मान नहीं

करता है, समूह विशेष के प्रति हेय दृष्टिकोण रखता है तो बच्चे का अपने समाज, संस्कृति, परिवेश के प्रति नजरिया बदल जाता है और बहुधा वह स्वयं को हीन-दीन समझने लगता है। वंचित वर्ग एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के साथ अक्सर ऐसा देखने में आता है। अत: ये बच्चे धीरे-धीरे विद्यालय से दूरी बना लेते हैं।

- **अति संरक्षण (Over protection):** विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति अति संरक्षण की भावना विद्यार्थियों की स्वनिर्भरता की प्रक्रिया में बाधक बनती है, जिसका समग्र परिणाम विद्यार्थियों की समावेशन की प्रक्रिया में अवरोध के रूप में सामने आता हैं। विद्यार्थियों में उनकी क्षमता के अनुरूप समाज में समावेशन की प्रक्रिया को प्रारम्भ करना परिवार की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है।
- **अस्वीकरण (Rejection):** विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति परिवार एवं समाज के व्यक्तियों का दृष्टिकोण का यह दूसरा प्रमुख कारण है। परिवार का यह दृष्टिकोण इस तथ्य को उजागर करता है कि बच्चें की सामर्थ्यध्क्षमता पर परिवार के लोगों को विश्वास नहीं है। परिवार की दूसरी भूमिका यह भी है कि वह बच्चें में इस प्रकार की अनुभूति, विश्वास एवं मूल्यों को स्थापित करें कि बच्चें को समाज में अपने समावेशन के बारे में भी पूर्ण विश्वास हो सकें।

अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा में समावेशन के बाधक आधारभूत कारणों को दूर किए बगैर समावेशन के लक्ष्य को पाना असम्भव है।

समावेशी शिक्षा के समक्ष चुनौतियां

भारत में निशक्त व्यक्तियों की शिक्षा के लिए समेकित बाल विकास योजना, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम और नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम में यह सुनिश्चित किया गया है की 18 साल तक के सभी बच्चों को गुणवत्तायुक्त, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जायेगी। वर्ष 2011 की जनगणनानुसार भारत में 0 से 19 वर्ष आयु वर्ग के विकलांग व्यक्तियों की कुल संख्या 77,90,921 है, जो कि विभिन्न विकलांगता से ग्रस्त हैं। इसे तालिका-2 एवं रेखाचित्र की सहायता से

तालिका-2

भारत में 0 से 4 व 5 से 9 तथा 10 से 19 वर्ष आयु के विकलांगों की संख्या

आयु	कुल विकलांग	दृष्टि बाधित	श्रवण बाधित	मानसिक मंदता	गति विकलांगता	भाषा विकलांगता	मानसिक रोगी	अन्य	विविध विकलांगता
0 से 4	12,91,332	2,77,006	3,15,485	49,361	1,17,326	32,461	8,352	4,12,690	78,651
5 से 9	19,55,539	3,59,118	4,06,281	1,35,709	2,10,662	2,12,818	26,240	4,17,234	1,87,477
10 से 19	46,16,050	7,74,034	8,72,483	4,10,019	7,17,668	4,38,423	1,01,189	8,89,921	4,12,313

*स्रोत: तालिका सी-20: आयु वर्ग और विकलांगता के प्रकार के अनुसार व्यक्तियों की संख्या, जनगणना 2011, भारत

दर्शाया गया है।

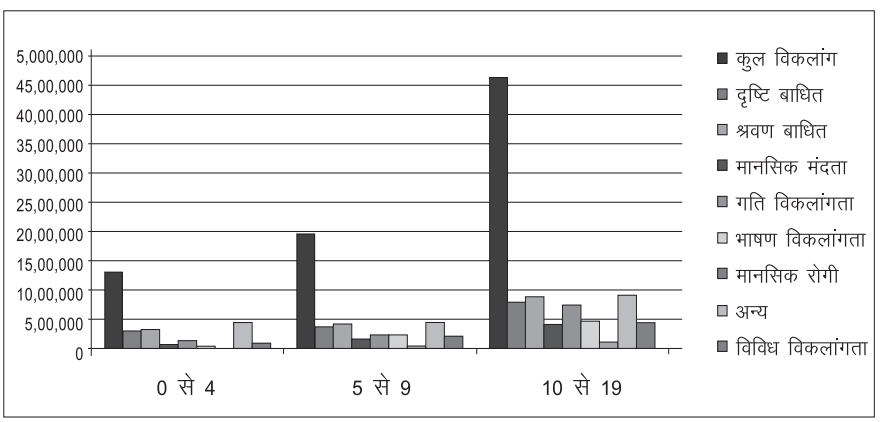

तालिका-2 के आंकड़ों का रेखाचित्रीय प्रदर्शन

इसलिये विभिन्न विकलांगता युक्त इन बच्चों को उचित एवं समान अवसर प्रदान करने तथा समावेशी शिक्षा को लागू करने में अनेक चुनौतियों व बाधाओं का सामना करना पड़ता हैं जो निम्न प्रकार की हैं:

- शिक्षकों, अभिभावकों एवं समाज की मनोवृत्ति की बाधा एक प्रमुख बाधा है।
- सभी प्रकार के विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी का होना।

- विद्यालय की दोषपूर्ण कार्यप्रणाली एवं दोषपूर्ण भवन संरचना का होना।
- केंद्र और राज्य की अनेक योजनाओं और नियमों का क्रियान्वयन ठीक प्रकार से न होना।
- अभिभावकों एवं समाज में समावेशी शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव होना।
- विद्यालयों में आवश्यक तकनीकी उपकरण और उन्नत संसाधनों का उपलब्ध न होना।
- समावेशी शिक्षा के लिए आवश्यक फंड और धन की कमी का होना।
- नि:शक्त विद्यार्थियों संबंधी आंकड़ों के संग्रहण एवं उचित आकलन का अभाव।
- नि:शक्त विद्यार्थियों को चिह्नित करने के उन्नत तरीकों का अभाव।
- सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक तथा भाषा संबंधी विविधता की बाधा।
- केंद्र और राज्य सरकार के प्रशासनिक ढांचे की संरचना का दोषपूर्ण होना।
- नि:शक्त एवं विकलांग व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसरों का उपलब्ध न होना।
- केंद्र और राज्य की विभिन्न योजनाओं और नियमों के बारे में आमजन को जानकारी न होना।
- केंद्र और राज्य की विभिन्न योजनाओं का ठीक से प्रचार-प्रसार न होना।

समावेशी शिक्षा हेतु दिशा

समावेशी समाज का निर्माण करने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण उपकरण है, समाज के प्रत्येक वर्ग को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अवसर मिलने पर ही लोकतांत्रिक प्रकिया में सक्रिय भागीदारी के अवसर सुनिश्चित किए जा सकते हैं। समावेशन के प्रति सक्रिय, सचेत एवं सहभागी दृष्टिकोण विकसित किया जाना जरुरी है। समावेशन की नीति को हर विद्यालय एवं सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किए जाने की जरूरत है। बच्चों को जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह विद्यालय में हों या बाहर, सभी जगह बच्चों की भागीदारी को सुनिश्चित किए जाने की जरूरत है। विद्यालयों को ऐसा केंद्र बनाए जाने की आवश्यकता है, जहाँ बच्चों को जीवन की तैयारी कराई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी बच्चे खासकर शारीरिक एवं मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों और कठिन परिस्थितियों में

जीने वाले बच्चों को इस क्षेत्र के सबसे ज्यादा फायदे मिल सकें । (एन.सी.एफ. 2005, पृष्ठ 96) अत: विद्यालयों में बच्चे के सफल समावेशन हेतु निम्न बिंदुओं को अपनाया जाना आवश्यक हैं:

शिक्षा के क्षेत्र में

- यह निश्चित किया जाए कि 18 वर्ष की उम्र तक के विकलांग बच्चों को शैक्षिक वातावरण उपलब्ध कराकर नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जाए एवं विकलांग बच्चों को सामान्य विद्यालयों में समेकित किया जाए।
- शासकीय और निजी विद्यालयों की देशभर में स्थापना की जाए ताकि देश के किसी भी स्थान या क्षेत्र में रहने वाला विकलांग व्यक्ति विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर सके।
- विशेष विद्यालयों में व्यवसायिक प्रशिक्षण के आवश्यक संसाधन व सुविधाएं उपलब्ध कराये जाएं तथा कक्षा आठ तक एवं 16 वर्ष या उससे अधिक आयु के विकलांग विद्यार्थियों को अंश कालीन कक्षाओं के माध्यम से अलग से विशेष शिक्षण प्रदान कर पाठ्यक्रम पूरा किया जाए।
- खुले विद्यालय और विश्वविद्यालय के माध्यम से शिक्षण की व्यवस्था की जाए और कक्षा-कक्षों में एवं परिचर्चा व संवाद हेतु इलेक्ट्रानिक साधनों व मीडिया का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध मानव संसाधनों का उपयोग अनौपचारिक शिक्षा के लिए किया जाए ताकि उन क्षेत्रों के नि:शक्त व्यक्तियों को अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जा सके।
- प्रत्येक विकलांग विद्यार्थी को उसकी विकलांगता के अनुसार आवश्यक उपकरण एवं संसाधन और शिक्षण सामग्री आदि नि:शुल्क रूप से अवश्य उपलब्ध करायी जाए।
- विद्यालयी शिक्षा प्रणाली में शामिल प्रत्येक बच्चे को उसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व भाषा की क्षमता, शारीरिक क्षमता, मानसिक सामर्थ्य एवं उसके सीखने के तौर तरीकों को समझना आवश्यक है। इसी समझ के आधार पर विद्यार्थियों को सीखने-सिखाने के घटकों को पहचानने में मदद मिलेगी।
- विद्यार्थियों को आवश्यकतानुसार पाठ्यवस्तु एवं विषय सामग्री, शिक्षण विधियों तथा शिक्षण तकनीकों, कक्षा-कक्ष की गतिविधियों एवं मूल्यांकन के तौर तरीकों में

समायोजन करने की आवश्यकता है।

- प्रत्येक बच्चे को सीखने-सिखाने की एक स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकार किया जाये।
- सामान्यत: विद्यालयों में कुछ बच्चों को ही विभिन्न गतिविधियों में प्रदर्शन के अवसर दिया जाता है । इससे इन बच्चों को ही अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिल पाता है परन्तु अन्य बच्चे हमेशा ही अपने को उपेक्षित महसूस करते हैं। अत: प्रशंसा पाने हेतु श्रेष्ठता एवं योग्यता को आधार बनाने के अवसर सभी बच्चों को मिलने चाहिए। इन बच्चों की विशिष्ट क्षमताओं को पहचाना जाना चाहिए और इन विशिष्ट क्षमताओं की भी प्रशंसा होनी चाहिए । यह सम्भव है कि इन बच्चों को अपना काम पूरा करने और प्रदर्शन करने के लिए अतिरिक्त समय या मदद की जरूरत होगी। समावेशन की प्रक्रिया के लिए अपेक्षित धैर्य आवश्यक है। (एन.सी. एफ. 2005, पृष्ठ 96)
- विद्यालय में दण्ड एवं भय जहाँ एक ओर बच्चों में विद्यालय के प्रति लगाव को कम करते हैं, वहीं दूसरी तरफ बच्चों के सीखने में बाधा पहुँचाते हैं। सीखना बच्चे में विद्यालय के प्रति लगाव पैदा करने वाला सकारात्मक घटक है। अत: विद्यालयों में समावेशी माहौल बनाने के लिए शारीरिक एवं मानसिक दण्ड का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।
- विद्यालय में अनुशासन थोपने की जगह बच्चे का स्वयं अनुशासित होना जरूरी है। इसके लिए विद्यालय में इस प्रकार का वातावरण बनाया जाना चाहिए जिससे बच्चा अपने कार्य की जिम्मेदारी स्वयं लेना सीखे व दूसरों को पहुँचने वाली बाधा एवं पीड़ा को भी महसूस करना सीखे।
- विद्यालय द्वारा बच्चों को स्वयं निर्णय लेने एवं इन निर्णयों के क्रियान्वयन में सक्षम बनाया जाए क्योंकि बच्चे विद्यालय में निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं व्यवस्था से सीखते हैं। विद्यालय शिक्षार्थियों के लिए ऐसे मौके उपलब्ध करवाएँ कि बच्चे मौजूदा धारणाओं और समझ पर निर्णय ले पाएं, उन्हें चुनौती दे पाएँ या उनमें कुछ नया जोड़ पाएँ।
- बच्चे को परिवार, विद्यालय एवं समाज से ऐसे समावेशी अनुभव, समावेशी व्यवहार,

समावेशी विश्वास एवं समावेशी संस्कृति उपलब्ध कराई जानी चाहिए जिससे वह एक ऐसे लोकतांत्रिक नागरिक के रूप में विकसित हो सके, जो समावेशन के मूल्यों के प्रति दृढ़ आस्था रखता हो।

- सरकारी विद्यालयों के शिक्षा स्तर में सुधार हेतु एक निश्चित योजना बनाई जाए।
- विद्यालयों एवं छात्रावासों में स्वास्थ्य परीक्षण को अनिवार्य किया जाये और प्राथमिक चिकित्सा कक्ष की स्थापना की जाए।
- शिक्षकों को नियमित प्रशिक्षण हेतु एक प्रशिक्षण संस्था की स्थापना की जाये एवं विद्यालयों में भी शैक्षिक वातावरण का सर्जन किया जाए।
- केंद्र सरकार की शिक्षा संबंधी योजनाओं के मूल्यांकन एवं सुधार हेतु एक समिति या आयोग का अलग से गठन किया जाए।
- भारतीय संस्कृति व मूल्यों के प्रति आस्था हेतु प्राथमिक स्तर पर शिक्षा मातृभाषा में ही प्रदान की जाए।
- भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु विभिन्न योजनाओं की समीक्षा की जाए एवं समावेशी शिक्षा में व्याप्त समस्याओं के निराकरण हेतु आवश्यक कदम उठाये जायें।
- शिक्षा के व्यवसायीकरण पर रोक लगाई जाए और समावेशी विद्यालयों में विकलांग और नि:शक्त विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप ही सुविधाएं एवं साधनों को उपलब्ध कराया जाये, ताकि उनके शिक्षण में किसी प्रकार की बाधा न हो।

रोजगार के क्षेत्र में

- प्रत्येक क्षेत्र व समस्त विभागों में विकलांग व्यक्तियों हेतु पदों का सृजन किया जाए व उन पदों की स्थापना भी की जाए।
- प्रत्येक तीन वर्ष की अवधि में पदों की पहचान एवं उनकी पुन:रचना की सूची अपडेट (नवीनतम) की जाये एवं उसे तकनीकी रूप से भी विकसित की जाए।
- शासकीय विभागों में नियमानुसार 3% से कम नियुक्ति न दी जाए एवं सभी प्रकार के विकलांगों हेतु पदों का आरक्षण व वितरण किया जाए।
- विकलांग व्यक्तियों को आवश्यक व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाए व नियुक्ति के समय उम्र के संबंध में भी शिथिलता प्रदान की जाए।
- विकलांग व्यक्तियों के कार्यस्थल पर स्वास्थ्य व सुरक्षा का वातावरण निर्मित किया

जाए एवं इस कार्य हेतु संवैधानिक रूप से भी जिम्मेदारी तय की जाए।

- विकलांग व्यक्तियों को व्यवसाय की स्थापना हेतु आवश्यक रूप से रियायती सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाए तथा उनके लिए विशेष प्रशिक्षण केंद्रों, विशेष विद्यालयों तथा शोध केंद्रों व औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जाए।

अ–विभेदीकरण की नीति के रूप में

सरकार एवं स्थानीय प्राधिकरण द्वारा विकलांग एवं नि:शक्त व्यक्तियों व बच्चों तथा सामान्य विद्यार्थियों में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं किया जाए और उनके प्रति अ–विभेदीकरण की नीति का पालन सुनिश्चित किया जाए।

विकलांग संस्थाओं को मान्यता एवं केंद्र और राज्य स्तर पर आयुक्त की नियुक्ति–

विकलांगों हेतु केंद्र और राज्य स्तर पर विकलांग संस्थाओं की स्थापना को मान्यता प्रदान की जाए तथा उनमें मुख्य आयुक्त एवं आयुक्त की स्थापना भी की जाए। इसके साथ ही विकलांगों के कल्याण के लिए कार्य करने वाली निजी संस्थाओं एवं समाज सेवी संगठनों को भी मान्यता प्रदान की जाए ताकि सरकार द्वारा विकलांगों के कल्याण हेतु दी जाने वाली राशि का सदुपयोग किया जा सके। सम्बंधित विभाग द्वारा समय–समय पर उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों व विभिन्न योजनाओं तथा नीतियों के संबंध में रिपोर्ट तैयार कर केंद्र सरकार को भेजी जा जाए।

सामाजिक सुरक्षा

शासकीय और स्थानीय प्राधिकरण की विकास और आर्थिक क्षमताएं सीमित होने के कारण उनके द्वारा चलाए जाने वाले विकलांग कल्याण और पुनर्वास संबंधी कार्यक्रम पूरे नहीं हो पाते हैं अत: इन कार्यों को पूर्ण करने के लिए अशासकीय संगठनों और समाज सेवी संगठनों एवं संस्थाओं को भी आवश्यक आर्थिक सहायता तथा सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए। इसके साथ ही सरकार द्वारा अनिवार्य रूप से विकलांगों की सुरक्षा हेतु बीमा आदि की व्यवस्था की जाए ताकि विभिन्न योजनाओं तथा नीतियों के निर्धारित लक्ष्यों को पूर्णतया प्राप्त किया जा सके।

अन्य कार्य

- विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए पारिवारिक जागरूकता का अभियान एवं माता–पिता के लिए निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का आयोजन भी विशेष

अध्यापकों द्वारा जिला एवं ब्लाक स्तर पर किया जाए।

- यदि अध्यापक विकलांग बच्चों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण एवं भावात्मक लगाव और अपने उत्तरदायित्व को समझें तो इनकी शिक्षा के स्तर को और बढ़ाया जा सकता है।
- विशेष अध्यापक को विशेष बालकों के लिए निर्मित विभिन्न शिक्षण सहायक सामग्री ,उपकरण आदि के उचित प्रयोग में प्रशिक्षित किया जाए ताकि वे इसका प्रयोग विकलांग बालकों की शिक्षा में कर सकें।
- विकलांग बालकों के लिए चलाये जा रहे शैक्षिक कार्यक्रमों का आयोजन ग्रामीण परिक्षेत्रों में अधिक मात्रा में किया जाए।
- विशेष अध्यापकों में ऐसी योग्यता व क्षमता विकसित की जाए कि वे उपलब्ध संसाधनों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग कर सकें।
- विकलांग बालकों की आवश्यकता के अनुसार अनुकूल एवं उपयोगी संप्रेषण तकनीक तथा उपकरणों का प्रयोग किया जाए।
- मूकबधिर बालकों के लिए विभिन्न भाषाओं का प्रशिक्षण, विभिन्न प्रतीक चिह्नों, इलेक्ट्रॉनिक सम्प्रेषण सामग्री की व्यवस्था की जाए।
- श्रवण सहायक सामग्री के रूप में एम्पलीफायर, माइक्रोफोन की व्यवस्था की जाए ताकि शिक्षक और विद्यार्थी आपस में जुड़े रहें।
- दृष्टिबाधित बालकों के लिए ब्रेल लिपि, कंप्यूटर ब्रेल प्रणाली, बोलते हुए कंप्यूटर, व्हील चेयर, एडवांस व्हील चेयर आदि का प्रयोग किया जाए।
- शारीरिक रूप से विकलांग विद्यार्थियों के लिए सहायक उपकरण एवं प्रतिस्थापित उपकरण जैसे- सर्जिकल जुते और बूट, परिवर्तित जूते और बूट आदि की व्यवस्था की जाए।
- शिक्षकों द्वारा कक्षा में उपचारात्मक शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाए।
- अध्यापकों एवं विद्यालय प्रशासन द्वारा बाधारहित वातावरण का निर्माण कराया जाए।
- माता-पिता एवं समाज से विकलांगों के प्रति सकारात्मक संबंध विकसित किये

जाए।

- शोध आधारित नीतियों द्वारा विद्यार्थियों व शिक्षकों के व्यवहार में सुधार लाया जाए।
- पारिवारिक जागरूकता एवं माता-पिता को अभिप्रेरित करने के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाएं।
- अध्यापकों में विकलांग विद्यार्थियों के प्रति भावनात्मक लगाव एवं उत्तरदायित्व को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा अध्यापकों को प्रोत्साहन दिया जाए।
- शहरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रो में कार्यक्रमों का अधिक संचालन किया जाए।

उपसंहार

आज भारत में समावेशी शिक्षा को अनेक आर्थिक, सामाजिक एवं कई प्रकार की परेशानियों से संघर्ष करना पड़ रहा है। विकलांगों में समावेशित शिक्षा पद्धति से आत्मविश्वास तथा आत्म सम्मान की भावना मजबूत होगी। समावेशी शिक्षा के द्वारा सिर्फ विकलांगों में ही नहीं बल्कि सामान्य विद्यार्थियों में भी सामुदायिक भावना का विकास होगा। अत: आज के समय में समावेशी शिक्षा एक महती आवश्यकता बन गयी है। आज समाज में लोगों के दृष्टिकोण में धर्म, वर्ग, जाति, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक से ऊपर उठकर एक समावेशी समाज की सोच और भावना विकसित करने की जरुरत है ताकि वर्षों से उपेक्षित समाज के उन लोगों को भी समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जा सकें और इसके लिए ठोस कदम उठाने होंगे। विकलांगों व्यक्तियों को समाज की मुख्य धारा से जुड़ने की क्षमता विकसित की जाने के अवसर प्रदान करने होंगे ताकि जीवन में आने वाली विभिन्न चुनौतियों का मुकाबला स्वयं कर सकें।

संदर्भ ग्रन्थ

कुमार, संजीव एवं सिंह, सुधाकर प्रसाद. (2008) सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत प्रशिक्षण पा रहे स्कूली शिक्षकों के समावेशी प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन, नई दिल्ली: परिप्रेक्ष्य. दिसम्बर, पृष्ठ 75-80.

कुमार, संजीव. (2011).बिहार में महा दलित बालकों की शिक्षा और उनका समावेशी विकास. नई दिल्ली: परिप्रेक्ष्य. दिसम्बर,पृष्ठ 35-46.

कुमार, संजीव और कुमार, खगेन्द्र (2007). इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया. ईजेआइई, नवंबर, वाल्यूम-2, नं. 2.

तुली, उमा. (2013). समावेशी शिक्षा: एक वास्तविकता. नईदिल्ली: योजना. अप्रेल, पृष्ठ 17-20.

सिंह, अजय कुमार. (2008). भारत में समावेशी शिक्षा के स्वरूप. नईदिल्ली: परिप्रेक्ष्य. अप्रेल, पृष्ठ 81-86.

सुधांशु आर.के. (दिसं. 2012) एड्रैसिंग द चैलेंज आफ इंक्लूसिव एजुकेशन इन उत्तराखण्ड

अरोड़ा, आर. और राजरानी (2010). शिक्षा का मौलिक अधिकार: कुछ मुद्दे और कुछ चुनोतियाँ. नई दिल्ली: भारतीय आधुनिक शिक्षा, जुलाई, पृष्ठ 5-15.

काण्डपाल, केवलानंद. (2012). शिक्षा में समावेशन: चुनौती एवं समाधान.

पटेल एम. एंड अंसारी एम. (2013) एजुकेशन आफ डिफरेंटली एबल्ड चिल्ड्रन: गर्वमेंटल इंटरवेंशन एंड अटैनमैंट्स. महाराष्ट्र: इंडियन स्ट्रीम रिसर्च जर्नल, दिसं, वाल्यूम-3

कोहमा, ए. (2012) इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया: अ कन्ट्री इन ट्रांजिशन

फारेल, पी. (2012) इंक्लूसिव एजुकेशन फार ऑल: अ ड्रीम और रियल्टी

एसईएसएम-01. मंद व्यक्तियों की पहचान एवं मूल्यांकन. भोपाल: म.प्र.भो.मु.वि.वि.पृष्ठ-35

http://dsq-sds.org/article/view/524/701 accessed on 11-2-14, 12.25pm.

http://rehabcouncil.nic.in/writereaddata/rciact.pdf accessed on 17-1-14, 12.10pm.

http://socialjustice.nic.in/pwdact1995.php accessed on 12-1-14] 3.35pm.

http://mhrd.gov.in/schemes accessed on 3-2-14] 4.15pm.

http://www.socialjustice.nic.in/pdf/ntact1999.pdf accessed on 4-3-14, 12-08pm.

http://ebookbrowsee.net/ncf 2005.pdf. d346492106, page &96 accessed on 8-3-14, 4.07pm.

http://mhrd.gov.in/rashtriya_madhyamik_shiksha_abhiyan accessed on 19-2-14, 2.09pm.

http://mhrd.gov.in/inclusive_education accessed on 15-1-14, 16.44pm.

http://www.census2011.co.html accessed on 19-1-14, 5.30pm.

http://rajssa.nic.in/LEHAR/lehar_districtwiseannualreport.aspx accessed on 24-3-14, 3.01pm

http://rajssa.nic.in/LEHAR/LeharBlockwiseAnnualReport.aspx accessed on 24-3-14, 3.05pm

http://www.unesco.org/education/pdf/SALAMA_E.PDF accessed on 19-3-14, 3.10pm.

http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NPE1986_H.pdf accessed on 17-1-14, 2.23pm.

http://www.unicef.org/rosa/InclusiveInd.pdf accessed on 11-3-14, 3.40pm.

गर्ग, बी. (2012), सर्व शिक्षा अभियान. दिल्ली: कॉमन वेल्थ पब्लिकेशन लि.

हरलॉक, ई.बी. (2005), चाइल्ड डवलपमेंट. दिल्ली: टाटा मैकग्रो हिल पब्लिकेशन कं. लि.

मल्होत्रा, आर. (2011) राईट टू एजुकेशन: फ्री एंड कंपलशरी एजुकेशन फार ऑल. दिल्ली: डीपीएस पब्लिकेशन

मोहंती जे. एंड मोहंती एस. (2011) इंक्लूसिव एजुकेशन- दिल्ली: दीप एंड दीप पब्लिकेशन

मोहंती जे. एंड मोहंती एस. (2002) प्राइमरी एंड एलिमेंट्री एजुकेशन- दिल्ली: दीप एंड दीप पब्लिकेशन

राव डी.बी. (2003) नेशनल पॉलिसी आन एजुकेशन- दिल्ली: डिसकवरी पब्लिकेशन

नाटानी, एस. (2011). गैर सरकारी संगठन. जयपुर: प्रिज्म बुक्स

बल्हारा, ए. (2009). प्राथमिक शिक्षा:एक दृष्टिकोण. दिल्ली: अल्फा पब्लिकेशन

बायती, जे. (2006). बाल विकास: समस्या समाधान. जयपुर: अग्रवाल पब्लिकेशन

भनोट, एस., (2009). सामाजिक रूपसे कुसमायोजित बालक. दिल्ली: कनिष्क पब्लिकेशन

मिश्रा, एम.के. (2009). असामान्य मनोविज्ञान. दिल्ली: अर्जुन पब्लिकेशन

शर्मा, एम. (2009) मानसिक मंद बालक. दिल्ली: कनिष्क पब्लिकेशन

शर्मा, वाय.के. (2009). शारीरिक रूप से विकलांग बालक. दिल्ली: कनिष्क पब्लिकेशन

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005). राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

बुच, एम.बी. सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन (वॉल्यूम 1,2,3,4)

(2011). खोजें और जाने. उदयपुर, अंक-8

(2010). इंक्लूसिव क्लासरूम, सोशियल इंक्लूसन/एक्सलूसिव एंड डाइवरसिटी. नई दिल्ली: देशराज पब्लिकेशन

(2011). द सेवन प्रिंसिपल फॉर इंक्लूसिव एजुकेशन. टेनेबॉम

(2006). एजुकेशन आफ चिल्ड्रन विद स्पेशल नीड. एनसीईआरटी

(2012). लिट्रेचर रिव्यू आफ द प्रिंसिपल एंड प्रैक्टिसेज रिलेटिंग टू इंक्लूसिव एजुकेशन फार चिल्ड्रन विद स्पेशल एजुकेशनल नीड्स, एनसीएसई

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, अगस्त 2014

बाल अधिकारों के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति

सरिता चौधरी*

सारांश

बच्चे गतिमान, सजीव, विकासमान, परिपक्वोन्मुख व्यक्तित्व हैं। बच्चा स्वयमेव पूर्ण व्यक्तित्व है। उसकी अपनी आवश्यकताएं, आकांक्षाएं, पसंद, नापसंद होती हैं। बच्चे को अचेतन, अर्द्धचेतन आवश्यकताएं, इच्छाएं, उसका परिवेश तथा आनुवांशिकता प्रभावित करती हैं। बच्चे को समझना, उसे जानना यद्यपि सरल कार्य नहीं है। परन्तु अध्यापकों को उसे समझना आवश्यक है। राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर बच्चों के संतुलित तथा समग्र विकास के लिए, उन्हें कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं। उन अधिकारों को बच्चों को उपलब्ध कराना परिवार तथा समाज का दायित्व है। समाज ने बालकों के विकास का सम्पूर्ण दायित्व अध्यापकों को सौंपा हुआ है इस कारण बच्चों के विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी अध्यापकों पर है। अध्यापक बच्चों के विकास के लिए एक तरह से सम्पूर्ण जिम्मेदार नहीं है तो महत्वपूर्ण जिम्मेदार अवश्य हैं।

बच्चों के समग्र विकास के लिए अवसर प्रदान करना अभी भी एक चुनौती बनी हुई है। परन्तु सामूहिक प्रयास तथा सभी क्षेत्रों की समेकित कार्यवाही से इसे यथार्थ में बदला जा सकता है। समेकित प्रयास में सरकार के विभिन्न विभागों, माता-पिताओं तथा अध्यापकों का महत्वपूर्ण योगदान रहना आवश्यक है ।

जब हम बच्चों की बात करते हैं तब भारत की जनसंख्या के 42 प्रतिशत भाग की बात करते हैं। क्योंकि भारत की कुल संख्या का 42 प्रतिशत भाग 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों का है। अर्थात भारत के बजट में बालकों की हिस्सेदारी 42 प्रतिशत होनी ही चाहिए। परन्तु खर्च संबंधी समंक कुछ अलग ही कहानी कह रहे हैं। वर्ष 2005 के बीच केन्द्र सरकार द्वारा व्यय किए गए 100 रुपयों में से औसतन 3 पैसे बच्चों की सुरक्षा पर,

*सहायक प्राध्यापक, श्री सत्य साई बी.एड. कालेज, पंजाब यूनिवर्सिटी, करइवाला, मलोट, पंजाब
ई-मेल : saritashireesh@gmail.com

40 पैसे बाल स्वास्थ्य पर , प्राथमिक शिक्षा पर 1 रु. 50 पैसे खर्च किए गए। लेकिन इस बात को अब अधिकाधिक स्वीकृति मिल रही है कि नियोजन के केन्द्र में अब बच्चों के अधिकार पर आधारित विकास को प्रमुखता देनी होगी (योजना, नव. 2008)।

बच्चे राष्ट्र का भविष्य हैं। यह कथन भावुकता में कहा गया कथन नहीं है और न ही यह कथन किसी देश, काल या परिस्थिति से प्रभावित है। यह केवल ऋजु सत्य है। बच्चों के विकास पर ही राष्ट्र का भविष्य निर्भर है। प्रेम तथा सम्मानपूर्वक बच्चों का पालन पोषण करना, यथायोग्य शैक्षिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक, शारीरिक, संवेगात्मक, तथा आध्यात्मिक विकास करना, प्रत्येक अभिभावक एवं अध्यापक का दायित्व है। अध्यापकों का दायित्व अभिभावकों के दायित्व से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश अभिभावकों को यह पता ही नहीं होता कि उन्हें बच्चों के पालन पोषण तथा विकास के लिए क्या करना चाहिये तथा क्या नहीं करना चाहिये। नन्हें नागरिकों के विकास में अध्यापकों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। अध्यापक बाल विकास के चक्र की धुरी होते हैं। अध्यापकों का दायित्व यह है कि वे जाति, सम्प्रदाय, पंथ, आर्थिक, शारीरिक, बौद्धिक, रंग आदि विभेदों से अप्रभावित रहकर, अपने शिष्यों का विकास, मनोयोगपूर्वक एवं अपनी समस्त शक्तियों का उपयोग करते हुए करें।

उपर्युक्त सदंर्भों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अध्यापकों में भी कुछ विशेषताएं होनी आवश्यक है। इनकी पूर्ति उन्हें अपने शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से होती रहती है।

उपर्युक्त प्रस्तुतीकरण को आधार मानकर अनुसंधायक ने अपना मन बनाया कि वह बालकों के अधिकारों के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का अध्ययन करे, ताकि शिक्षण प्रशिक्षण एवं सेवाकालीन शिक्षक ओरिएन्टेशन कार्यक्रमों में उनके अभिमतों तथा अभिवृत्तियों में सकारात्मक परिवर्तन किया जा सके, ताकि अध्यापक बालकों को उनके अधिकार प्रदान करने में अपेक्षाकृत अधिक तत्पर हो सकें। अत: अनुसंधायक ने बाल अधिकारों के संबंध में अध्ययन का मन बनाया है।

अध्ययन का औचित्य

अनुसंधान सारांशों तथा बाल अधिकार घोषणा पत्र, भारतीय संविधान में निहित बाल अधिकारों से संबंधित अध्ययन के निहितार्थों से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है कि अध्यापकों को बाल अधिकारों का ज्ञान तथा उनकी समझ होना नितांत आवश्यक है ताकि वे बालकों को उनके अधिकारों को उपलब्ध कराने में अपने कर्त्तव्यों का पालन कर

सकें। अध्यापकों की बाल अधिकारों के ज्ञान की समझ आदि को उपलब्ध कराने से पूर्व उनकी बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्तियों की जानकारी कर लेना महत्वपूर्ण कदम है। अत: अनुसंधायक ने इस कार्य को करने के लिए अपने आप को प्रस्तुत किया है।

उद्देश्य

इस अध्ययन के अनुसंधायक ने जो उद्देश्य निर्धारित किये हैं वे इस प्रकार हैं:

(i) बाल अधिकारों के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

(ii) लैंगिक आधार पर अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(iii) शैक्षिक योग्यताओं के आधार पर अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना ।

(iv) ग्रामीण पृष्ठभूमि तथा शहरी पृष्ठभूमि के आधार पर अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना ।

(v) सामाजिक वर्गों (सवर्ण, अन्य पिछड़ा तथा अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजातियों) के अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना ।

परिकल्पनाएं

इस अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया:

(i) अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में लैंगिक आधार पर सार्थक स्तर अन्तर नहीं है।

(ii) अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में शैक्षिक योग्यताओं के आधार पर सार्थक स्तर अन्तर नहीं है।

(iii) अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में परिवेश के आधार पर सार्थक स्तर अन्तर नहीं है।

(iv) अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में सामाजिक वर्गों की आधार पर सार्थक स्तर अन्तर नहीं है।

आधारभूत मान्यताएं

अध्ययन से पूर्व अनुसंधायक यह मानकर चली है कि–

(i) अध्यापक, समाज का एक महत्वपूर्ण, सजग, विवेकशील, जागृति संपन्न

घटक है तथा वे बाल अधिकारों के संबंध में अपनी निश्चित अभिवृत्ति रखते हैं।

(ii) बाल अधिकारों के संबंध में अध्यापक कार्य करने के लिये तत्पर रहते हैं।

(iii) अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति को मापनी से मापा जा सकता है।

(iv) किसी भी व्यक्ति की अभिवृत्ति में शैक्षिक प्रयासों से सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है।

(v) अभिवृत्ति में परिवर्तन करने की अपेक्षा नई अभिवृत्ति का निर्माण किया जाना सरल कार्य है।

(vi) अध्यापकों को उसका दायित्वबोध कराकर किसी भी अच्छे कार्य के लिए तत्पर तथा प्रेरित किया जा सकता है।

(vii) अध्यापकों की अभिवृत्ति का प्रभाव बच्चों के साथ-साथ उनके अभिभावकों तथा समाज को दिशा देने वाले जागरूक नेतृत्व पर पड़ता है।

शोध विधि

इस अध्ययन में नॉरमेटिव सर्वे का प्रयोग किया गया है। सर्वेक्षण विधि का ध्येय यथार्थ के विभिन्न पक्षों का विवरण देना, उपलब्ध परिस्थितियों तथा दशाओं की प्रकृति को जानना, वर्तमान परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करना, मानकों का निश्चयन तथा विभिन्न परिस्थितियों में पाए जाने वाले संबंधों का निर्धारण करना होता है।

न्यादर्श

न्यादर्श चयन की विधियों में से अनुसंधायक ने साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्श प्रविधि द्वारा न्यादर्श का चयन किया है। न्यादर्श के चयन के लिए विद्यालयों को संदर्श-इकाई माना गया है। न्यादर्श में केवल सीनियर सेकण्डरी स्तर तक के अध्यापकों को ही लिया गया। उद्देश्यों की संप्राप्ति के लिये केवल 100 अध्यापकों का चयन किया गया है। असल में समंक संग्रह के लिए इससे अधिक अध्यापकों को उपकरण दिये गये थे, लौटकर आने वाले उपकरणों की संख्या 110 रहीं। इन उपकरणों में 10 अध्यापकों के प्रत्युत्तर निर्देशानुसार नहीं थे। अत: इन उत्तर प्रपत्रों को निकाल दिया गया। इस प्रकार अध्ययन में 100 अध्यापक सम्मिलित हैं। भोपाल शहर के 4 विद्यालयों का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्श के माध्मय से किया गया। चयनित विद्यालय तथा न्यादर्श वितरण को विभिन्न चरों के अनुसार आगे तालिका-1 में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका-1 न्यादर्श वितरण

क्र. सं.	विद्यालय का नाम	अ. संख्या
1	शा. महात्मा गांधी उ.मा.वि. बरखेड़ा, भोपाल	30
2	शा. सरोजनी नायडू, कन्या उ.मा.वि., शिवाजी नगर भोपाल	22
3	शा. राजाभोज उ.मा.वि. 1100 क्वार्टर, भोपाल	36
4	शा. हा.स्कूल अखबरपुर, भोपाल	12
	विषय वर्ग	
1	सामाजिक विज्ञान	20
2	विज्ञान तथा गणित	27
3	भाषा	38
4	अन्य	15
	लैंगिक	
1	पुरुष	33
2	महिला	67
	परिवेश	
1	ग्रामीण	46
2	शहरी	54
	जाति वर्ग	
1	सामान्य	42
2	ओ.बी.सी	14
3	एस.सी.एस.टी.	44
	योग	**100**

शोध उपकरण

आंकड़ों के संकलन के लिए पूर्व निर्मित मानकीकृत बाल अधिकार अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया । इस अभिवृत्ति मापनी का निर्माण डॉ. जयंत पाल सिंह के द्वारा किया गया। इस मापनी में कुल 40 कथन हैं जो बाल अधिकारों के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित हैं। अभिवृत्ति मापनी में बाल अधिकारों के कुल 19 श्रेणियों से संबंधित कथन

हैं जिन्हें विस्तार से तालिका–2 में प्रदर्शित किया गया है:

तालिका–2

अभिवृत्ति मापनी में क्षेत्रानुसार कथनों की संख्या

क्र.	क्षेत्र का शीर्षक	कथनों का क्रमांक	कुल कथन
1.	सामान्य बाल अधिकार	1, 5, 11, 21, 26, 32, 39,	7
2.	प्रतिभाशाली बालक	15, 40	2
3.	बालश्रम	16, 20	2
4.	कन्या भ्रूण हत्या	31	1
5.	परिवार कल्याण	2, 28, 30, 31	4
6.	स्वास्थ्य	3, 4, 9, 10, 25, 35	6
7.	समता तथा समानता	27, 34	2
8.	विकलांग बालक	12, 14, 17	3
9.	कार्य शिक्षा	18, 19	2
10.	माता तथा बालक	3, 7, 24	3
11.	दण्ड	6, 22, 23, 33	4
12.	किशोर अपराधी	13	1
13.	दुर्गम क्षेत्रों के बालक	26	1
14.	बालक का सम्मान	17, 29	2
15.	विद्यालय पूर्व बालक	35	1
16.	परम्परागत विद्यालय	36	1
17.	संयुक्त परिवार के बालक	37	1
18.	अध्यापक प्रशिक्षण	38	1
19.	अनिवार्य शिक्षा	8	1
	योग	**45**	**40**
नोट: एक से अधिक क्षेत्रों में सम्मिलित कथन 3, 17, 26, 31 तथा 35 हैं। कुल कथन=40			

प्रदत्तों का विश्लेषण, परिणाम एवं व्याख्या

प्रदत्तों का संकलन करने के पश्चात् प्राप्त प्रदत्तों के उद्देश्यानुसार विश्लेषण एवं व्याख्या की गई। उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिणाम निकलकर आये हैं :

इस शीर्षक के अन्तर्गत सबसे पहले समस्त अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों का अध्ययन किया गया है। इसके बाद अध्यापकों के विभिन्न वर्गों के अध्यापकों की अभिवृत्ति की तुलना की गई है। बाल अधिकारों के प्रति समस्त अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों का वितरण तथा सांख्यिकीय मूल्यों को तालिका–3 तथा आलेख 1 में प्रस्तुत किया गया हैं। तालिका–3 तथा अलेख–1 का विश्लेषण करने पर प्रकट होने वाले तथ्य इस प्रकार हैं: हमारे सदर्श में सम्मिलित कोई भी अध्यापक बाल अधिकारों के प्रति अविधायक अभिवृत्ति वाला नहीं है। क्योंकि न्यूनतम अंक 136 हैं। जबकि पूर्ण अविधायक अभिवृत्ति 40 अंक पर तथा आंशिक अविधायक अभिवृत्ति 80 अंक पर होती है। 120 अंक वाला व्यक्ति अनिश्चित माना जाएगा।

तालिका–3

बाल अधिकारों के प्रति समस्त अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों का आवृत्ति वितरण तथा सांख्यिकीय मूल्य

स्तर	वर्ग अंतराल	आवृत्ति	निकष	सांख्यिकीय मूल्य
अति उच्च 26	196 – 200	19	संख्या	100
	191 – 195	2	न्यूनतम	136
	186 – 190	1	अधिकतम	200
	181 – 185	4	प्रसार	76
उच्च 36	176 – 180	6	अंक योग	16773
	171 – 175	9	मध्यमान	167.73
	166 – 170	12	मध्यांक	166
	161 – 165	9	बहुलक	196
मध्य 26	156 – 160	8	प्र. वि.	19.18
	151 – 155	11	कुकु.	–1.0
	146 – 150	3	विष.	–0.10
	141 – 145	4	प्रति–10	140
निम्न 12	136 – 140	12	प्रति–90	196

केवल 12 प्रतिशत अध्यापक निम्न विधायक अभिवृत्ति वाले हैं। 26 प्रतिशत अध्यापक अति उच्च सकारात्मक अभिवृत्ति वाले हैं। 36 प्रतिशत अध्यापक उच्च सकारात्मक अभिवृत्ति वाले हैं। 26 प्रतिशत अध्यापक मध्य सकारात्मक अभिवृत्ति वाले हैं। ये तीनों सांख्यिकीय मूल्य उच्च विधायक श्रेणी में आते हैं। प्रसामान्य वक्र में इस अभिवृत्ति वितरण के मध्यमान मध्यांक बहुलक, तथा प्रमाप विचलन क्रमश 160 तथा 20 होने चाहिए। समस्त अध्यापकों के अभिवृत्ति वितरण के अनुसार ये मूल्य 167.73, 166, 196 तथा 19.8 हैं। अर्थात प्रमाप विचलन 0.2 अंक कम है। तथा अन्य मूल्य अधिक हैं।

अवलोकन से प्रकट हो रहा है कि निम्न तथा मध्य सकारात्मक अभिवृत्ति वाले अध्यापकों की प्रतिशत 38 है अत: 38 प्रतिशत अध्यापकों की अभिवृत्ति को उच्च तथा अति उच्च बनाने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

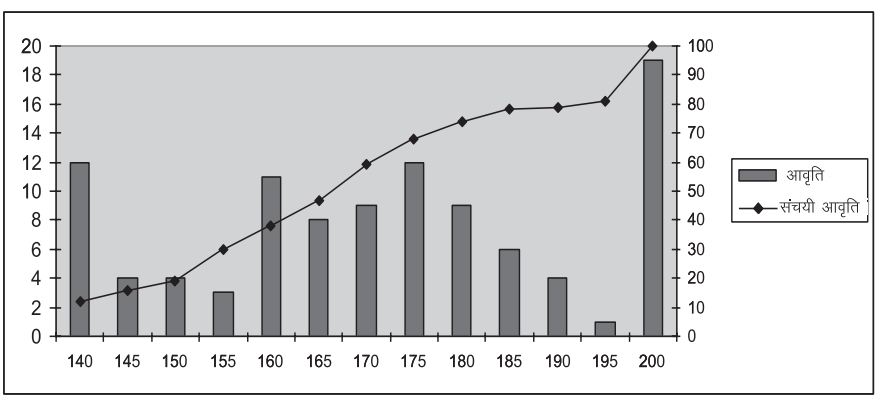

आलेख-1: बाल अधिकारों के प्रति समस्त अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों का आवृत्ति तथा संचयी आवृत्ति वितरण

कुकुदता Kurtosis की दृष्टि से यह अभिवृत्ति वितरण-1.0 प्रतिशत कुकुद Kurtis है जो कि सामान्य वक्र के मूल्य 0.263 से कम है। अत: कुकुदता लेप्टीकुर्टिक है। विषमता की दृष्टि से अभिवृत्ति वितरण -0.10 ऋणात्मक विषमता लिए हुए है अर्थात आवृत्ति वितरण बायीं ओर झुका हुआ है जिसका अर्थ कि इस वितरण में अंकों की प्रवृत्ति अधिक अंकों की ओर है।

बाल अधिकारों के प्रति अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों की लैंगिक आधार पर तुलना

लैंगिक को आधार मान कर अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों तथा उनके संख्यिकीय मूल्यों

को तालिका–4 तथा आलेख–2 में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका–4 (क)

लिंग के आधार पर अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक तथा सांख्यिकीय मूल्य

स्तर	वर्ग अंतराल	प्रतिशत आवृत्ति		निकष	महिला	पुरुष
		पुरुष	महिला			
अति उच्च	196 – 200	4	15	संख्या	67	33
	191 – 195	0	2	न्यूनतम	136	138
	186 – 190	0	1	उच्चतर	200	198
	181 – 185	4	0	प्रसार	64	60
उच्च	176 – 180	2	4	योग	11113	5660
	171 – 175	4	5	मध्यमान	165.86	171.51
	166 – 170	5	7	मध्यांक	165	171
	161 – 165	3	6	बहुलक	196	196
मध्यम	156 – 160	2	6	प्र.वि.	18.31	20.61
	151 – 155	4	7	कुकु.	–0.69	–1.29
	146 – 150	0	3	विष.	0.236	–0.19
	141 – 145	1	3	t value = 0.0933		
निम्न	136 – 140	4	8	p = 48		

तालिका–4 (ख)

लिंग के आधार पर अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक तथा सांख्यिकीय मूल्य

निकष	महिला	पुरुष	मध्यमान अंतर	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता
मध्यमान	168.86	171.51	2.65	0.093	सार्थक नहीं
प्र.वि.	18.31	20.61			

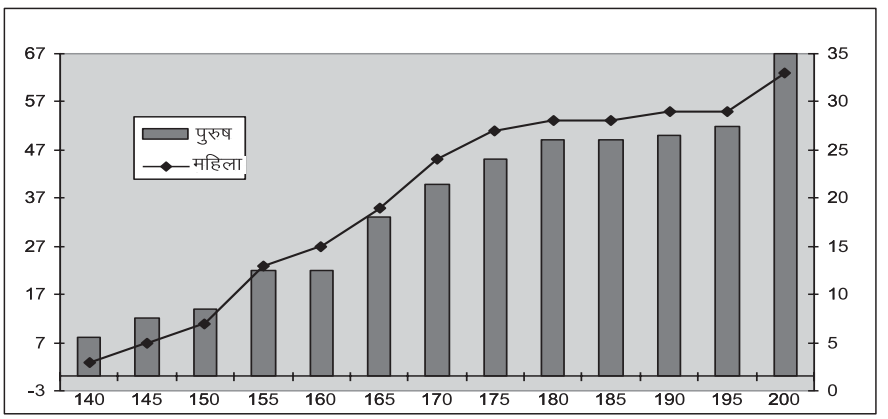

आलेख-2: लैंगिक आधार पर अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति की आवृत्ति तथा संचयी आवृत्ति वितरण

तालिका-4 तथा आलेख 2 का अवलोकन करने पर प्रकट होने वाले तथ्य इस प्रकार हैं: महिला अध्यापकों में निम्न तथा मध्य सकारात्मक आवृत्ति अंकों वाले अध्यापकों की संख्या 40.3 प्रतिशत है जबकि पुरुष अध्यापकों में यह प्रतिशत 33 है। अति उच्च अभिवृत्ति अंकों वाले पुरुष अध्यापक 24 प्रतिशत हैं जबकि महिला में यह संख्या 27 प्रतिशत है। उच्च सकारात्मक अभिवृत्ति अंकों वाले महिला अध्यापक 32 प्रतिशत तथा पुरुष अध्यापक 42 प्रतिशत हैं।

पुरुष तथा महिला अध्यापकों के मध्यमान का पारस्परिक अंतर 2.65 है। इस अन्तर का क्रान्तिक अनुपात 0.093 है जो कि .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। महिला अध्यापकों के मध्यमान अभिवृत्ति अंकों तथा पुरुष अध्यापकों के मध्यमान अंकों में सार्थक स्तर का अन्तर नहीं हैं। महिला अध्यापकों की अंकों की विषमता 0.236 है तथा पुरुष अध्यापकों में यह मूल्य-0.19 है जिससे विदित होता है कि महिलाओं के अंकों का झुकाव उच्च अंकों की ओर पुरुष अध्यापकों का झुकाव निम्न अंकों की ओर है। कुकुदता का अध्ययन करने पर विदित होता है कि महिला अध्यापकों के अंकों की कुकुदता - 0.69 है जबकि पुरुष अध्यापकों के अंकों की कुकुदता - 1.29 है जो कि सामान्य वक्र की कुकुदता 0.263 से क्रमशः कम तथा अधिक है। अतः महिलाओं अध्यापकों के अंकों को लेप्टीकुर्टिक तथा पुरुष के अंक प्लेटिकुर्टिक हैं।

बाल अधिकारों के प्रति अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों की परिवेश के आधार पर तुलना

परिवेश के आधार पर अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों को तालिका–5(क) तथा आलेख 3 में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका–5 (क)

परिवेश के आधार पर अध्यापकों के बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक व सांख्यिकीय मूल्य

स्तर	वर्ग–अंतराल	आवृत्ति		निकष	सांख्यिकीय मूल्य	
		ग्रामीण	शहरी		ग्रामीण	शहरी
अति उच्च	196 – 200	4	15	संख्या	46	54
	191 – 195	0	2	न्यूनतम	136	138
	186 – 190	1	0	उच्चतम	200	196
	181 – 185	1	3	प्रसार	7823	8802
उच्च	176 – 180	2	4	योग	7823	8802
	171 – 175	5	4	मध्यमान	164.45	170.35
	166 – 170	9	3	मध्यांक	165	171
	161 – 165	6	3	बहुलक	196	196
मध्यम	156 – 160	3	5	प्र.वि.	18.31	20.61
	151 – 155	7	4	कुकु.	0.154	– 1.34
	146 – 150	3	0	विष.	0.4	– 0.182
	141 – 145	1	3	क्रान्तिक अनुपात	0.649 सार्थक नहीं	
निम्न	136 – 140	4	8			

तालिका–5 (ख)

परिवेश के आधार पर अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति के सांख्यिकीय मूल्य

निकष	महिला	पुरुष	मध्यमान अंतर	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता
मध्यमान	164.45	170.35	5.90	0.649	सार्थक नहीं
प्र.वि.	18.31	20.61			

तालिका-5(ख) तथा आलेख 3 का अवलोकन करने पर प्रकट होने वाले तथ्य इस प्रकार हैं– ग्रामीण अध्यापकों में निम्न अभिवृत्ति अंकों वाले अध्यापक 9% हैं जबकि शहरी अध्यापकों में यह 15% है। मध्य सकारात्मक अभिवृत्ति वाले ग्रामीण अध्यापक 30% तथा शहरी अध्यापक 22% हैं। शहरी और ग्रामीण अध्यापकों के मध्यमान अंकों में सार्थक स्तर का अन्तर नहीं हैं। क्रान्तिक अनुपात 0.649 है जो कि .05 स्तर पर सार्थक नहीं हैं।

आरेख 3

परिवेश के आधार पर अध्यापकों के बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक तथा सांख्यिकीय मूल्य

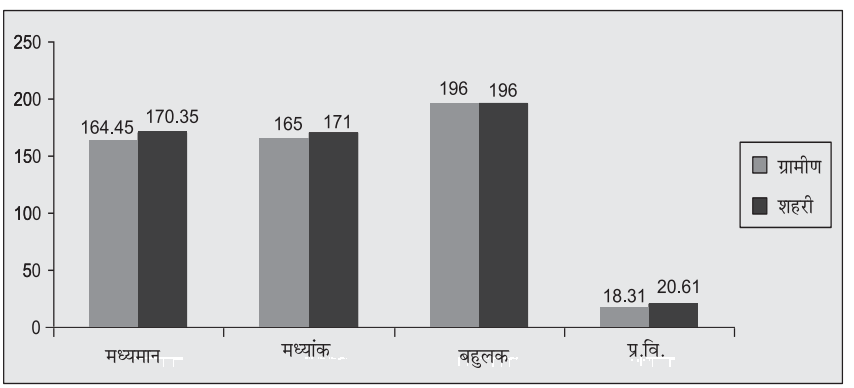

सामाजिक वर्गों के आधार पर अध्यापकों के बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति की सामाजिक वर्गों के आधार पर तुलना

सामाजिक वर्गों के आधार पर अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों को तालिका-6(क) तथा आलेख-4 में प्रस्तुत किया गया हैं।

तालिका 6(क)

सामाजिक वर्गों के आधार पर अध्यापकों के बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक तथा सांख्यिकीय मूल्य

स्तर	वर्गअंतराल	आवृत्ति			निकष	सांख्यिकीय मूल्य		
		सामान्य	ओबीसी	एससी.		सामान्य	ओबीसी	एससी.
अति उच्च	196 - 200	8	3	8	संख्या	42	14	44

क्रमशः

	186 – 190	1	0	0	मध्यमान	164.09	175.92	168.55
	181 – 185	2	0	2	मध्यांक	164	173.5	170.5
उच्च	176 – 180	3	0	3	बहुलक	166	196	196
	171 – 175	1	4	4	प्र.वि.	16.27	14.25	22.3
	166 – 170	8	1	3	कुकु.	0.22	1.30	1.47
	161 – 165	4	0	5	विष.	.0.433	0.480	0.239
मध्यम	156 – 160	4	3	1	एफ. अनुपात 0.8308			
	151 – 155	5	1	5				
	146 – 150	2	0	1				
	141 – 145	0	0	4				
निम्न	136 –140	3	2	7				

तालिका 6(ख)
सामाजिक वर्गों के आधार पर अध्यापकों के बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक तथा सांख्यिकीय मूल्य

निकष	सामान्य	ओबीसी	एससी.	मध्यमान अंतर	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता
मध्यमान	164.09	175.92	168.55	9.82	0.8308	सार्थक नहीं
प्र.वि.	16.27	14.25	22.3			

सामाजिक वर्गों के आधार पर बने समूहों के अभिवृत्ति अंकों का अवलोकन करने पर प्रकट हो रहे तथ्य इस प्रकार हैं:

सामान्य, ओबीसी तथा एससीएसटी समूहों के मध्यमान अंक क्रमश: 164.09. 175.92 तथा 168.55 हैं। मध्यमान अंकों में दिखाई दे रहा अन्तर संख्यिकीय दृष्टि से सार्थक नहीं है। इन वर्गों का एफ. अनुपात 0.8308 है जो कि 5% स्तर पर तालिका मूल्य 3.01 से कम है। निम्नतम सकारात्मक अभिवृत्ति अंक 140 तक प्राप्त करने वाले अध्यापकों का प्रतिशत सामान्य, ओबीसी तथा एससीएसटी वर्गों में क्रमश: 7, 14 तथा 18 है।

तालिका 7 (क)

विषय वर्गों के अनुसार अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक तथा सांख्यिकीय मूल्य

स्तर		आवृत्तियां				सांख्यिकीय मूल्य				
	वर्गान्तर	समाजिक	विज्ञान	भाषा	अन्य	निकष	सामाजिक	विज्ञान	भाषा	अन्य
उच्चतम	196–200	2	2	9	6	संख्या	20	27	38	15
	191–195	0	0	2	0	मध्यमान	165.95	163.66	170.89	169.4
	186–190	0	1	0	0	मध्यांक	165.5	165	172.5	171
	181–185	1	0	3	0	बहु.	196	155	196	196
उच्च	176–180	0	2	3	1	प्र.वि.	20.11	11.28	21.52	22.92
	171–175	1	4	4	0	क्कु.	0.36	0.16	0.16	0.27
	166–170	3	7	2	0	विष.	–0.59	–0.41	–1—36	–1.46
	161–165	3	3	2	1					
मध्य	156–160	3	0	2	3					
	151 –155	3	4	3	1					
	146–150	2	1	0	0	एफ. अनुपात ळ 1.2843 सा.न				
	141–145	0	2	2	0					
निम्न	136–140	2	1	6	3					

आरेख-4

सामाजिक वर्गों के आधार पर अध्यापकों के बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति की आवृत्ति

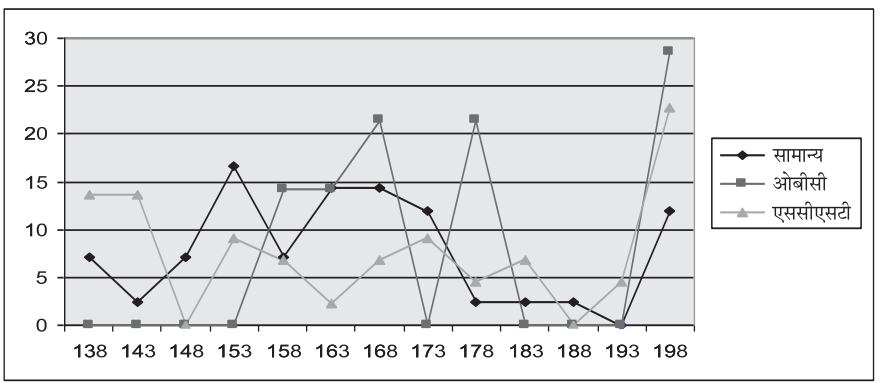

विषयवर्गों के आधार पर अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति की तुलना

विषय वर्गों के आधार पर अध्यापकों के बाल अधिकारों के प्रति अध्यापकों के अभिवृत्ति अंकों को तालिका-7(क) तथा आरेख 4 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-7(ख)

विषय वर्गों के अनुसार अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक तथा सांख्यिकीय मूल्य

निकष	सामाजिक	विज्ञान	भाषा समूह	अन्य	मध्यमान अंतर	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता
मध्यमान	165.95	163.66	170.89	169.4	7.5	1.2843	सार्थक
प्र.वि.	20.11	11.28	21.52	22.92			नहीं

तालिका-7(ख) तथा आरेख 5 का अवलोकन करने पर प्रकट हो रहे तथ्य इस प्रकार हैं:

विभिन्न विषय समूहों के मध्यमानों के मध्यमान अंको में सार्थक स्तर का अन्तर नहीं है क्योंकि इनका एफ. मूल्य 1.28 है जो कि 5% स्तर पर सार्थक नहीं है।

आरेख-5: विषय वर्गों के अनुसार अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति अंक

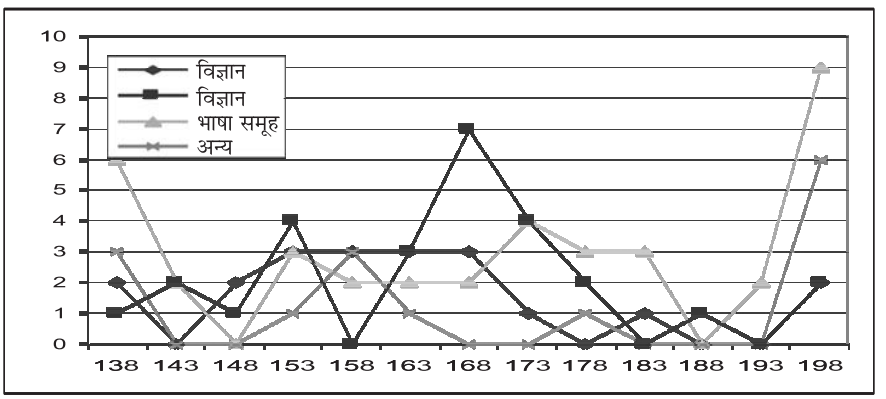

निष्कर्ष

(i) हमारी पहली परिकल्पना थी कि अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में लैंगिक आधार पर सार्थक स्तर का अन्तर नहीं है। परीक्षण से सिद्ध होता है कि पुरुष तथा महिलाओं के मध्यमान अभिवृत्ति अंकों का पारस्परिक क्रान्तिक अनुपात 0.093 है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: हमारी पहली शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई।

(ii) हमारी दूसरी परिकल्पना है कि अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में पृष्ठभूमि के आधार पर सार्थक स्तर का अन्तर नहीं है। परीक्षण से सिद्ध हुआ है कि ग्रामीण तथा शहरी अध्यापकों के मध्यमानों के अन्तर के आधार पर क्रान्तिक अनुपात 0.649 है जो कि .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई है।

(iii) हमारी तीसरी परिकल्पना है कि अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में सामाजिक वर्गों के आधार पर सार्थक स्तर का अन्तर नहीं है । परीक्षण से सिद्ध हुआ है कि शैक्षिक योग्यताओं के आधार पर अध्यापकों के वर्गों के मध्यमानों के अन्तर का एफ अनुपात 0.83 है जो कि 0.05 स्तर पर भी सार्थक नहीं है। अत: शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई ।

(iv) हमारी चौथी परिकल्पना है कि अध्यापकों की बाल अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति में विषय वर्गों के आधार पर अन्तर नहीं है। परीक्षण का निष्कर्ष है कि इन वर्गों का

एफ अनुपात 1.28 है जो कि सार्थक नहीं है। अत: हमारी शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई।

निहितार्थ

अध्यापक लगभग एकमत से स्वीकार करते हैं कि बच्चे राष्ट्र का भविष्य हैं, उन्हें विकास की सभी सुविधाएं मिलनी चाहिए। अधिकतर अध्यापक यह मानते हैं कि दुर्गम स्थानों, आदिवासी क्षेत्रों, रेगिस्तानी तथा पहाड़ी क्षेत्रों के बच्चों के लिए नि:शुल्क आवासीय विद्यालय खोले जाने चाहिए। अध्यापकों का मानना है कि असफलता का भय बच्चों के आत्मविश्वास को कम करता है जिससे यह निष्कर्ष निकलता हैं कि बच्चों को सफलता की अनुभूति करानी चाहिए। 58% प्रतिशत अध्यापक नहीं मानते कि आजकल के बच्चे पढ़ने में कमजोर हैं। 84% अध्यापक मानते है कि महिला कर्मचारियों के बच्चों की देखभाल की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। 52% अध्यापक मानते हैं कि अनाथालयों से बच्चा गोद लेने के नियमों को कठोर बनाया जाए ताकि अनैतिक रूप से गोद लेने वाले देशी-विदेशी व्यक्तियों से बच्चों को बचाया जा सके। अत्यन्त कम प्रतिशत में अध्यापक चाहते हैं कि शिक्षा भत्ता सभी अभिभावकों को मिलना चाहिए।

98% अध्यापक इस तथ्य से परिचित हैं कि बच्चे के जन्म से पूर्व तथा पश्चात् माताओं के स्वास्थ्य की रक्षा करना सरकार का महत्वपूर्ण दायित्व है। 78% मानते हैं कि गर्भावस्था के दौरान मिलने वाले भोजन का प्रभाव बच्चे के स्वास्थ्य पर पड़ता है। 98% अध्यापक राष्ट्रीय टीकाकरण अभियान को आवश्यक मान रहें हैं। अध्यापक ऑगनवाड़ी तथा विद्यालयों मे अनियमिताओं के होने पर भी मध्याह्न भोजन को बंद करने की सलाह नहीं दे रहे हैं। मध्याह्न भोजन को अनावश्यक भार मानने वाले 42% हैं। जबकि 52% अनावश्यक भार नहीं मानते हैं। मध्याह्न भोजन में अनियमिताएं होती हैं। इसलिए उसे बंद कर देने का सुझाव 49% अध्यापक दे रहें हैं। जबकि 50% इसे चालू रखना चाहते हैं। इस कथन को अभिवृत्ति मापनी में 36 श्रेणीक्रम मिला है। किसी अच्छे कार्यक्रम का इसलिए बंद करना कि उसमें अनियमिताएं होती हैं, पलायनवाद है। उन कमियों का निराकरण किया जा सकता है। अध्यापक मध्याह्न भोजन की अनियमितताओं से व्यथित हैं। यहाँ आवश्यक रूप से अध्यापकों को जानकारी मिलनी चाहिए कि मध्याह्न भोजन का उद्देश्य बच्चों के कुपोषण को समाप्त करना हैं। कक्षा में उपस्थिति बढ़ाना गौण उद्देश्य हो सकता है। लेकिन आम व्यक्ति गौण उद्देश्य को ही मुख्य उद्देश्य मानता है।

विकलांगों के प्रति अध्यापकों के व्यवहार उच्च स्तर के हैं। वे मानसिक रूप से कमजोर बच्चों के लिए विशेष प्रशिक्षित अध्यापकों के महत्व को जानते हैं। मानव प्रजनन तंत्र के संबंध में शिक्षा देने के पक्ष में 83% अध्यापक हैं। जबकि केवल 15% विपक्ष में हैं। बालकों के पालकों को प्रशिक्षित किया जाए ताकि वे अपने बच्चों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें। अध्यापकों का मानना है कि मन्दबुद्धि बच्चों को शोषण तथा अपमानजनक व्यवहार से सुरक्षा मिलनी आवश्यक है।

41% अध्यापकों की इस अभिवृत्ति में परिवर्तन करना आवश्यक है कि बच्चे भगवान की देन हैं उन्हें जन्म लेने से रोकना उचित नहीं है। 22% अध्यापकों को अपना विचार बदल लेना चाहिए कि गरीबों के लिए अधिक संतान होना अच्छा है। बच्चों का उनके अधिकार तभी मिल सकते हैं जबकि परिवार में बच्चों की संख्या सीमित रहे। इस संबंध में 7% अध्यापकों में अभिवृत्ति परिवर्तन की आवश्यकता है। यद्यपि परिवार कल्याण को अध्यापकों की सर्व सम्मति होनी चाहिए परन्तु यहां पर स्थिति ऐसी नहीं आई है। अत: अध्यापकों को जनसंख्या शिक्षा दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

98% अध्यापक इस तथ्य से परिचित हैं कि बच्चे के जन्म से पूर्व तथा पश्चात माताओं के स्वास्थ्य की रक्षा करना सरकार का महत्वपूर्ण काम है। 78% मानते हैं कि गर्भावस्था के दौरान मिलने वाले भोजन का प्रभाव बच्चे के स्वास्थ्य पर पड़ता हैं। 98% अध्यापक राष्ट्रीय टीकाकरण अभियान को आवश्यक मान रहे हैं।

समता के संबंध में अध्यापकों की अभिवृत्ति अत्यंत उल्लेखनीय है। 94% अध्यापक गरीबी रेखा से नीचे के बालकों के लिए नि:शुल्क आवासीय विद्यालय, दुगर्म क्षेत्रों में नि:शुल्क आवासीय विद्यालय खोलने के पक्षधर हैं। 87% अध्यापक उच्च मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति की संख्या को बढ़ाने के लिए सहमति व्यक्त कर रहे हैं।

गाँधी और महावीर के देश में हिंसा का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। यहाँ पर अध्यापकों में हिंसात्मक प्रवृत्ति का प्रकटीकरण हो रहा है। लगभग 50% अध्यापकों को अविलम्ब अहिंसा के रास्ते को अपनाकर प्रेम के आधार पर बच्चों को सुशील, विनम्र, करुणामय तथा स्नेहशील बनाना चाहिए तथा स्वयं भी इन गुणों को अपनाना होगा तभी विश्व शान्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।

मंदबुद्धि को अपमानजनक व्यवहार के प्रति सुरक्षा मिले, ऐसा मानने वाले अध्यापक लगभग 99% है। तथा बच्चों को भगवान का रूप मानने वाले अध्यापकों की

प्रतिशतता 90% है। अध्यापक उच्च प्रतिशत में ऑगनवाड़ी कार्यक्रम में सुधार के लिए अभिमत प्रदान कर रहे हैं। अध्यापकों का मानना है कि मदरसों तथा संस्कृत विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में आधुनिक विषयों का समावेश होना चाहिए। संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण सबसे अधिक बच्चे दुष्प्रभावित होते हैं। इस कथन को 95% अध्यापक अपनी पूर्ण तथा आंशिक सहमति प्रकट कर रहे हैं।

अधिकतर अध्यापक मनोविज्ञान का विशेष प्रशिक्षण, शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में दिया जाना उचित मान रहे हैं। अध्यापकों में 71% अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। 28% अध्यापक अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा को बेकार मानते हैं। अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा के संबंध में अध्यापकों के मतों का गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

अग्रवाल यू.सी. (2007) : *बच्चों के मौलिक अधिकार तथा उनके क्रियान्वयन की चुनौतियां,* प्रतियोगिता दर्पण जनवरी 2007

बुच, एम.बी. (1986), *थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन,* वॉल्युम 1 एन्ड 2, न्यू देहली: एनसीइआरटी।

बेस्ट, जे. डब्ल्यु (1998), *रिसर्च इन एजुकेशन,* न्यू देहली: प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया प्रा. लिमिटेड।

भारत सरकार:

: *भारत का संविधान* : विधि एवं न्याय मंत्रालय विधाई विभाग, राजभाषा खण्ड 1996

: *भारत 2008*, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय,

: *भारत 2009,* प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय

: *कुरुक्षेत्र*, दिसम्बर 2006, ग्रामीण विकास मंत्रालय, मानवाधिकार विकास विशेषांक।

: *बालक अधिनियम 1960* (1 अगस्त 1985 तक यथा विद्यमान, विधि एवं न्याय मंत्रालय)

: *उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम* (1 फरवरी 1999 तक यथाविद्य)

: *बाल अधिकार और बाल संरक्षण*, आशारानी बोहरा, प्रकाशन विभाग (1999)।

: *बाल विकास के प्रति भारत की प्रतिबद्धता*, रेणुका चौधरी योजना नवम्बर 2008.

: *भारतीय बच्चे* : एक विवरण, *योजना*, नवम्बर 2006

: *गरीबों की शिक्षा के हक के लिए संघर्ष*, शांता सिन्हा, *योजना*, नवम्बर 2006

: ग्रामीण बच्चों के लिए कठिन दौर, कृष्ण कुमार, योजना, नवम्बर 2006

: विकास प्रत्येक बच्चे का अधिकार, निर्मला लक्ष्मणन, योजना, नवम्बर 2006

: बच्चों के विकास में बाल फिल्मों की भूमिका, जयसिंह, योजना, नवम्बर 2006

: एक भारत दो चेहरे, योजना, नवम्बर 2006

: बाल कल्याण के लिये अधिकारोन्मुख राह अपनाएं, योजना, नवम्बर 2007

: 46 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे कुपोषण से ग्रस्त, योजना, नवम्बर 2007

: ग्रामीण बालकों के लिए कल्याणकारी योजनाएं कुरुक्षेत्र, नवम्बर 2007

: बालश्रम एक कलंक, कुरुक्षेत्र, नवम्बर 2007

: संकट में बचपन, कुरुक्षेत्र नवम्बर 2007

: बालश्रम समस्या कारण एवं प्रभाव, कुरुक्षेत्र 2007

: ग्रामीण भारत में बालश्रम, कुरुक्षेत्र 2007

चौधरी एस.के. (2006) रू भारत में मानवाधिकार विधियां अनेक जागरूकता शेष, सिविल सर्विस क्रोनिकल सितम्बर 2006.

दूबे, एन., गयनी एस. (1993) : विभिन्न विषय में वर्गों के अध्यापकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का अध्ययन। भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका जन-जून 1993.

एफ, एन. करलिंगर (1983), *फाउन्डेशन्स ऑफ बीहेवरल रिसर्च*, न्यू देहली: सुरजीत पब्लिकेशन्स।

गैरेट एच.ई. (1981) : *स्टेटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एंड एजुकेशन*, बम्बई, वेकिल्स, फीफर्स साइमन्स लि

गुप्ता, एस.पी. (2010). *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन.* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन

कपिल, एच.के. (2012) : *अनुसंधान विधियाँ*, आगरा, एच.पी. भार्गव बुक हाउस

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005). राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. नई दिल्ली

पाण्डेय, के.पी. (2011), *शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन*, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन

राय, पारसनाथ (2008) : *अनुसंधान परिचय*, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।

सिंह, अरुण कुमार (2010) : *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ*, दिल्ली : नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोती लाल बनारसी दास प्रकाशन

सिंह, भोपाल (1985): *जनसंख्या शिक्षा के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का अध्ययन*, गढ़वाल वि.वि. की पी-एच.डी. का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध

श्रीवास्तव एस.एल., (2006) : *मानवीय मूल्यों का संरक्षक*, मानवाधिकार आयोग, कुरुक्षेत्र, दिसम्बर

यूनिसेफ (2009), *कन्वेनशन ओन दी राइट ऑफ चाइल्ड*, http://www.unicef.org/crc/

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

बच्चों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता और दायित्व के विकास में विद्यालय का योगदान

ऋषभ कुमार मिश्र*

सारांश

यह लेख एक लघु अध्ययन के आधार पर उच्च प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थियों की 'पर्यावरण' की समझ की व्याख्या करता है। इस शोध में दिल्ली के सरोजनी नगर क्षेत्र के तीन सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों ने हिस्सा लिया था। बच्चों की पर्यावरण की समझ का पता लगाने के लिए उनसे 'हमारा पर्यावरण' विषय पर चित्र बनवाया गया और उनसे इन चित्रों की विवेचना भी करवायी गयी। बच्चों द्वारा बनाए चित्रों की व्याख्या से पता चलता है कि उनकी पर्यावरण की समझ में एकरूपता न होकर विविधता है। वे पर्यावरण को प्रकृति प्रधान पर्यावरण से लेकर, मानवीय गतिविधि के प्रभाव से प्रदूषित पर्यावरण के आयाम में समझते हैं। वे पर्यावरण को प्रकृति के समान समझते हैं और मानव समाज को एक अलग निकाय में रखते हैं।

आजकल पर्यावरण से जुड़े मुद्दे हमारे दैनिक चर्चा का अंग बन चुके हैं। मीडिया द्वारा 'गो ग्रीन' के नारे का प्रचार हो; पर्यावरण के संपोषण और सुरक्षा के लिए चलाये जा रहे विभिन्न जागरूकता अभियान, या स्कूलों की दीवारों पर पर्यावरण की चुनौतियों को दिखाते पोस्टर हों; ये सभी प्रतीक पर्यावरण और इससे जुड़ी समस्याओं के प्रति हमारी बढ़ती चेतना को दिखाते हैं। पर्यावरण के प्रति इस 'चेतना' प्रसार की मुहिम में बच्चों को महत्वपूर्ण अभिकर्ता और उन तक पहुँचने के लिए शिक्षा को एक मुख्य अभिकरण माना गया है (यूनेस्को, 1992; यूनेस्को, 1995; आई.यू.सी.एन., 1991, रिकिन्सन, 200)। औपचारिक शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पर्यावरण के मुद्दों को पाठ्यक्रम का अंग बनाया गया है। स्कूल स्तर पर भी विज्ञान, पर्यावरण अध्ययन और सामाजिक विज्ञान समेत अन्य

*सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा महाराष्ट्र, 442005
E-mail: rishabhrkm@gmail.com

विषयों में पर्यावरण से जुड़े मुद्दों की मौजूदगी को देखा जा सकता है। यह भी आसानी से देखा जा सकता है कि स्कूलों में भी पर्यावरण शिक्षा से जुड़ी पाठ्यसहगामी गतिविधियों की भरमार होती है। इन गतिविधियों के द्वारा पर्यावरणीय मुद्दों पर शिक्षाशास्त्रीय हस्तक्षेप के सशक्त अवसरों को उपलब्ध कराए जाने का भरपूर प्रयास किया जा रहा है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा, 2005 में भी 'पर्यावरण शिक्षा' को केंद्रीय स्थान दिया गया है। यह दस्तावेज पर्यावरण अवनयन की अप्रत्याशित दर को चिन्तनीय मानता है। यह 'पर्यावरण शिक्षा' को प्राकृतिक वातावरण को समझने तथा उसकी देखभाल करने के लिए प्रेरित करने के माध्यम के रुप में देखता है। इसमें यह भी सुझाया गया है कि पर्यावरण शिक्षा को विभिन्न विषयों से जोड़ा जाए और इस पर आधारित प्रासंगिक गतिविधियों को पाठ्यचर्या का अंग बनाया जाए।

इस पृष्ठभूमि में यह लेख एक लघु अध्ययन के आधार पर बच्चों की 'पर्यावरण' की समझ की विवेचना और विश्लेषण करता है। इसमे यह देखने का प्रयास किया गया है कि उच्च प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थी पर्यावरण और उसके घटकों को किस रूप में समझ रहे हैं? इस अध्ययन का उद्देश्य ज्ञान के स्तर को परखना न होकर उनकी समझ के विभिन्न पक्षों की पड़ताल करना है। अध्ययन के अन्तर्गत बच्चों की पर्यावरण की समझ का पता लगाने के लिए उनसे 'हमारा पर्यावरण' विषय पर चित्र बनवाया गया। इस प्रकार की गतिविधि को करवाने का सैद्धान्तिक आधार यह था कि बच्चों के चित्रों के द्वारा उनके विचार व्यक्त होते हैं (आर्नहाइम, 1969, व्रयगात्स्की, 1971)। इसके साथ ही पूर्व में हुए शोध कार्यों में (बराजा, 1999; शिपर्डसन, 2007) भी बच्चों के चित्रों द्वारा उनकी समझ को पता लगाने का कार्य किया जा चुका है। चित्र बनाने के बाद विद्यार्थियों को यह भी कहा गया कि वे अपने चित्र का स्पष्टीकरण देते हुए बताएं कि उनका चित्र किस प्रकार से पर्यावरण को दिखाता हैं? शोध के सहभागी बच्चे दिल्ली के सरोजनी नगर क्षेत्र के तीन सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 7 में पढ़ने वाले विद्यार्थी थे। कुल 122 विद्यार्थियों ने इस अध्ययन में सहभागिता की।

स्कूल	छात्र/छात्राएँ		
	छात्र	छात्राएँ	कुल
अ	28	15	43
ब	26	16	42
स	24	13	37

विश्लेषण

प्रत्येक चित्र और उसके स्पष्टीकरण को विश्लेषण की इकाई माना गया है। विद्यार्थियों द्वारा बनाए गए चित्र और विचारों को सम्मिलित रुप में देखा गया है। विश्लेषण के दौरान 8 छात्रों के चित्र और विवेचन अपूर्ण थे। इन्हें विश्लेषण प्रक्रिया से अलग कर दिया गया। अन्ततः 114 विद्यार्थियों के चित्र और स्पष्टीकरण को विश्लेषण का आधार बनाया गया। चूँकि तीनों ही विद्यालयों के छात्र समान सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से आते थे, अतः तीनों विद्यालयों को एक समूह के रूप में देखा गया है और अन्तर विद्यालय तुलना को विश्लेषण के केन्द्र में नहीं रखा गया है। विषयवस्तुगत विश्लेषण करते हुए पर्यावरण के घटक अवयवों की मौजूदगी, उनमें गुणात्मक समानता व असमानता के पैटर्न को ध्यान में रखा गया है। जब इस आधार पर समस्त चित्रों और स्पष्टीकरण को विश्लेषित किया गया तो यह पाया गया कि विद्याथियों की पर्यावरण की समझ को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं:

वर्ग	**उपवर्ग**	**विद्यार्थियों की संख्या**	**विद्यार्थियों की संख्या (% में)**	**वर्ग के विशेषक**
प्रकृति प्रधान पर्यावरण	पूर्णतया प्राकृतिक	42	37	पहाड़, बादल, सूरज, नदी पेड़, प्रत्येक चित्र में मौजूद; कुछ चित्रों में पक्षी व जानवर भी दर्शाए गए हैं, मानव रहित घर
	प्रकृति की प्रधानता व प्राथमिक गतिविधियों से युक्त	40	35	घरेलू गतिविधियों व खेती के काम में संलग्न मानव, घर और उसमें रहने वाले एक परिवार के सदस्य, गाँव, खेत और पगडंडी, जल के स्रोत (नदी, कुएँ और तालाब), पालतू पशु
मानवीय हस्तक्षेप निर्मित	नगरीकृत	18	16	एक से अधिक भवन, घर और स्कूल, पार्क और झूले, सड़क और गाड़ियाँ, पैण्ट-शर्ट-टाई पहने

				पुरुष, बहुमंजिली इमारतों के विपरीत दिशा में वृक्ष
	निम्नीकृत पर्यावरण	14	12	चिमनी से निकलता धुँआ, जंगलों की कटाई, नदी में कचरे का विसर्जन, नदी में गंदे नाले का गिरना, गाड़ी से निकलता धुआँ, गंदा नाला, बीमार चिड़िया, नाक पर रुमाल रखे मानव ।

विद्यार्थियों ने पर्यावरण की अपनी समझ को चित्रों और उनके स्पष्टीकरण के माध्यम से व्यक्त किया है। जब इन आँकड़ो का विश्लेषण किया गया तो यह देखा गया कि सहभागियों के द्वारा वृहद् रूप से दो प्रकार के पर्यावरण को दिखाया गया है– प्रकृति प्रधान पर्यावरण और मानवीय हस्तक्षेप निर्मित पर्यावरण।

प्रकृति प्रधान पर्यावरण:

72 प्रतिशत विद्यार्थियों के चित्र और स्पष्टीकरण में पर्यावरण के प्राकृतिक घटकों की प्रधानता देखने को मिली। इनके लिए पर्यावरण की अवधारणा प्रकृति के समतुल्य है। इनमें दृश्यभूमि के रूप में वन और गाँव को दिखाया गया है। अधिकतर चित्रों में मानव को प्राथमिक गतिविधियों में लगा हुआ दिखाया गया है। इस वर्ग को दो उपवर्गों में देखा जा सकता है–

पूर्णतया प्राकृतिक:

42 विद्यार्थियों (37 प्रतिशत) के चित्र ऐसे थे जिनमें केवल प्राकृतिक दृश्य दिखाए गए हैं। पहाड़, बादल, सूरज, नदी, पेड़ प्रत्येक चित्र में मौजूद है। कुछ चित्रों में वन जीव और पक्षी भी दिखाए गए हैं। इस प्रकार के चित्रों में पहाड़, सूरज, नदी, बादल और घास के साथ–साथ घर को भी दिखाया गया है। इन चित्रों में घर को मानव रहित दिखाया गया है। मानव गतिविधि या हस्तक्षेप के चिह्न और प्रतीकों को नहीं दिखाया गया है। विद्यार्थियों के स्पष्टीकरण के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

> *'पर्यावरण में खूबसूरती होती है। पेड़, फूल, तितली, पक्षी हमारे पर्यावरण को खूबसूरत बनाते हैं। पेड़ों के कारण हम मनुष्य जीवित हैं।'*
>
> *'यह हमारा पर्यावरण है। पेड़ से हमें ऑक्सीजन मिलती है और यह पर्यावरण को हरा–भरा रखता है। बादल हमें बारिश देता है। चिड़िया*

चहचहा के इसे सुन्दर बनाती है।'

हमने पर्यावरण में उन चीजों को दिखाया है जिनसे हमें कुछ मिलता है। सूरज से रोशनी, बादल से पानी और पहाड़ से घर बनाने के लिए पत्थर मिलता है।'

इनकी विवेचना करने पर ज्ञात होता है कि इन विद्यार्थियों ने पर्यावरण को प्रकृति का समानार्थी माना है और 'अक्षत पर्यावरण' को चित्रित किया है, जो किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप से अप्रभावित है। इनके लिए पर्यावरण ऐसा स्थान है जिसमें पशु-पक्षी और पेड़-पौधे आते हैं और जो अजैव तत्वों जैसे पहाड़, बादल, सूरज, नदी आदि से मिलकर बना है। इसी के अनुरूप ही 'सुन्दरता' को पर्यावरण के एक मुख्य पक्ष के रूप में बताया है। इन चित्रों के स्पष्टीकरण की टिप्पणियों से ज्ञात होता है कि विद्यार्थी पर्यावरण को संसाधनों के स्रोत के रुप में देख रहे हैं। वे मान रहे हैं कि पर्यावरण, मानव की वायु, जल और घर की आवश्यकता को पूरा करने का साधन है।

प्रकृति की प्रधानता व प्राथमिक गतिविधियां

इसके अन्तर्गत 40 विद्यार्थियों (35 प्रतिशत) के चित्र और विवेचन आते हैं। इनके चित्रों में प्राकृतिक तत्वों के साथ, सक्रिय अभिकर्ता के रुप में मानव मौजूद है, जो घरेलू गतिविधियों और खेती के काम में संलग्न है। प्रायः एक घर और उसमें रहने वाले एक परिवार के सदस्यों को दिखाया गया है। सांस्कृतिक दृश्यभूमि के रूप में गाँव को दिखाया गया है। अधिकतर चित्रों में खेत और पगडंडी भी चित्रित है। पुरुषों और महिलाओं को ग्रामीण वेशभूषा में दिखाया है। जल के स्त्रोत के रूप में नदी के अलावा कुएँ और हैण्डपम्प दिखाए गए हैं। वन्य जीवों के स्थान पर पालतू पशुओं को दिखाया गया है। चित्रों के साथ इस प्रकार की टिप्पणियाँ हैं:

'मैंने पहाड़, नदी और खेत बनाया है। यह सब पर्यावरण है। पर्यावरण में रहने के लिए घर बनाया है।'

'मैंने गाँव का पर्यावरण बनाया है जहाँ लोग खेती करते हैं।'

'पर्यावरण का मतलब है कि पेड़-पौधे हो, गाँव हो, जानवर हो, नदी हो।'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस वर्ग के छात्रों के अनुसार पर्यावरण, एक प्राकृतिक स्थान है, जिसके द्वारा दिए गए साधनों के आधार पर ही मानव पर्यावास का विकास हुआ है। मानव की गतिविधि में पशुपालन, कृषि और घरेलू कार्य दिखाए गए हैं। इन गतिविधियों द्वारा जो परिवर्तन मानव द्वारा किए गए हैं वे केवल जीने की जरूरतों को

पूरा करने तक सीमित हैं। इन छात्रों ने अजैविक तत्वों को महत्व दिया है। ये पर्यावरण को मानव आवश्यकताओ की पूर्ति के स्रोत के रुप में देख रहे हैं जैसे- 'आक्सीजन का मिलना', 'वर्षा का होना'। इस प्रकार के विचार 'उपभोक्तावादी' नज़रिए की देन हैं जिसके द्वारा पर्यावरण (और विशेष रूप से प्रकृति) को इसी रूप में देखने की आदत डाल दी जाती है। हमारे शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाएँ भी इस दृष्टिकोण से भिन्न नहीं हैं। वे भी सीखने वाले में ऐसी दृष्टि को मजबूत करती हैं जिसके द्वारा सीखने का एक उद्देश्य 'लाभ', व 'उपयोग' को जान लेना होता है। इसी के अनुरूप विद्यार्थियों के विचारों में पर्यावरण के उन पक्षों को उभारा गया है, जिनसे हमें कुछ प्राप्त होता है (टिलबरी, 1995; हकल, 1999; स्टीवेन्सन, 2007)।

मानवीय हस्तक्षेप निर्मित नगरीय पर्यावरण

28 प्रतिशत विद्यार्थियों के चित्र और स्पष्टीकरण मे मानवीय हस्तक्षेप निर्मित नगरीय पर्यावरण की प्रधानता देखने को मिली। इस वर्ग के चित्र पहले वर्ग के चित्रों और स्पष्टीकरणों से इस अर्थ मे भिन्न हैं कि इनमें पर्यावरण के प्राकृतिक घटकों के बजाय मानव निर्मित घटकों को दिखाया गया है। वन, पहाड़, नदी और पशु-पक्षियों के बदले पक्की सड़क, वाहन, पार्क आदि दिखाए गए हैं। प्रदूषण को व्यक्त करने वाले प्रतीक जैसे- चिमनी, धुँआ आदि भी चित्रित और वर्णित हैं। पहले वर्ग में जहाँ घरों को छप्पर और फूस से बना दिखाया गया है, वहीं इस वर्ग में इमारतों को दिखाया गया है। इस वर्ग के चित्र और स्पष्टीकरण नगरीय दृश्यभूमि से भरे हुए हैं। इस वर्ग को दो उपवर्गों में देखा जा सकता है:

मानव गतिविधि प्रधान, नगरीकृत

इस प्रतिरूप के अन्तर्गत 18 विद्यार्थियों (16 प्रतिशत) के चित्र और विवेचन आते हैं। इन चित्रों में निर्मित-पर्यावरण को दिखाया गया है। इनमें एक से अधिक भवन, (जिन्हें घर और स्कूल की संज्ञा दी गई है), पार्क और झूले, सड़क और उस पर एक से अधिक गाड़ियों को दौड़ते हुए दिखाया गया है। पुरुषों को पैण्ट-शर्ट-टाई पहने चित्रित किया गया है। अधिकांश छात्रों ने चित्र में बहुमंजिली इमारतों के विपरीत दिशा में वृक्ष दिखाए हैं। इस वर्ग के चित्रों में जीव-जन्तु न के बराबर हैं। इन बच्चों ने अपने चित्रों की व्याख्या इस प्रकार की है-

> *'मैंने पर्यावरण को ऐसा इसलिए बनाया है क्योंकि आज का पर्यावरण ऐसा ही है। पहले हर जगह पेड़-पौधे दिखते थे लेकिन अब पेड़-पौधों की जगह बिल्डिंगों ने ले ली है।'*

'हमारे पर्यावरण में सड़क है, जिस पर गाड़ियाँ चल रही हैं। बिल्डिंग हैं जहाँ लोग काम करने जाते हैं और पार्क हैं जहाँ बच्चे खेलते हैं।'

'यह बदला हुआ पर्यावरण हुआ है। इसे आदमी ने बनाया है अपने रहने के लिए। पहले छोटे घर थे अब बड़े घर हैं क्योंकि जनसंख्या बढ़ गई है'

स्पष्ट है कि इन छात्रों ने पर्यावरण में आए बदलाव को स्वीकार किया है। ये मानव को बदलाव का अभिकर्ता मानते हैं और पर्यावरण की व्याख्या मानवकृत घटकों के सन्दर्भ में करते हैं। इमारतों और सड़क आदि दृश्यभूमि को परिवर्तन और विकास के संकेतक के रूप में देखा और चित्रित किया है। इस प्रकार के चित्र और स्पष्टीकरण यह भी संकेत करते हैं कि विद्यार्थी नगरीकरण के अवयवों को भी पहचान रहे हैं। वे नगरीकरण के प्रभाव में पैदा हुई दृश्यभूमियों जैसे–पार्क आदि को भी एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में संज्ञान में ले रहे हैं। ये ऐसी दृश्यभूमियाँ हैं जो नगरीकृत और निर्मित पर्यावरण में भी प्राकृतिक घटकों की अपरिहार्यता को सिद्ध करती है। विद्यार्थियो ने नगरीय पर्यावरण के प्रति 'लोकप्रिय' मान्यताओं के अनुरूप ही वेशभूषा को दिखाया है।

निम्नीकृत पर्यावरणः

इस प्रतिरूप के अन्तर्गत 14 विद्यार्थियों (12 प्रतिशत) के चित्र और विवेचन आते हैं। इस वर्ग के चित्रों में चिमनी से निकलता धुँआ, जंगलों की कटाई, नदी में कचरे का विसर्जन, नदी में गंदे नाले का गिरना, गाड़ी से निकलता धुआँ, गंदा नाला को दिखाया गया है। इनको पृष्ठभूमि में प्राकृतिक दृश्यों के बजाय बिल्डिगों को दिखाया गया है। मानव को पर्यावरण निम्नीकरण में योगदान करते हुए दिखाया गया है। बीमार चिड़िया, नाक पर रुमाल रखे मानव का चित्र जैसे बिम्ब भी हैं। चित्रों की विवेचना में कुछ इस प्रकार की बातें कही गई हैं–

'पेड़ काट कर कारखाने बना रहे हैं। इससे तरह–तरह की बीमारियाँ फैल रही हैं। कारखाने की वजह से पानी की कमी है और वायु प्रदूषण फैल रहा है।'

'पर्यावरण के पेड़ कट रहे हैं । अगर पेड़ नहीं रहे तो हम साँस कैसे लेंगे?'

मैंने एक पेड़ को काटता हुआ आदमी बनाया है। यह पर्यावरण को नुकसान पहुँचा रहा है।'

'नदी का पानी गंदा होता जा रहा है। मनुष्य पानी गंदा कर रहा है जिससे पर्यावरण को हानि हो रही है।'

इनकी विवेचना से ज्ञात होता है कि वर्तमान पर्यावरण को विद्यार्थी बदला हुआ पर्यावरण मान रहे हैं। इसके बदलाव के लिए मानव की गतिविधियों को जिम्मेदार मानते हैं। इनकी विवेचना से ज्ञात होता है कि वे प्रदूषण से प्रभावित पर्यावरण को देख रहे हैं। पानी और वायु जैसे प्राकृतिक घटकों के अवनयन को प्रदूषण के रूप में देखते हैं। पर्यावरण निम्नीकरण के दुष्प्रभाव को सीधे-सीधे मानव स्वास्थ से जोड़कर देखा है। प्रदूषण के दुष्प्रभाव को वे पर्यावरण के प्राकृतिक घटकों जैसे नदी, वनस्पति आदि के अवनयन के रूप में चित्रित कर रहे हैं।

चर्चा व विश्लेषण

विद्यार्थियों के इन चित्रों को विभिन्न पुस्तकों में दिखाए गए प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों के परावर्तन के रूप में देखा जा सकता है। पुस्तकों के चित्रों के समान प्रकृति का मानवीकरण भी किया गया है। इसकी दो सम्भव व्याख्याएँ हो सकती हैं– प्रथम, यह चित्रण के कार्य की सीमा हो सकती है कि उन्होंने परिचित प्राकृतिक दृश्यों को ही पर्यावरण का प्रतिरूप माना। यदि इस व्याख्या को माने तो चित्र और विवेचन में भिन्नता होनी चाहिए थी। जबकि विश्लेषण के दौरान ऐसी भिन्नता नहीं पायी गयी। अभिप्राय यह है कि चित्र में पर्यावरण के जिस प्रतिरूप को दिखाया है, विवेचन में पर्यावरण की उसी समझ को लिखित रूप में व्यक्त किया है। दूसरी व्याख्या यह हो सकती है पुस्तकों में दिखाए गए प्राकृतिक दृश्यों ने विद्यार्थियों की समझ को दिशा देने का कार्य किया है। इस प्रकार के कारकों के प्रभाव में बच्चों की समझ का विकास हुआ है। इस व्याख्या का समर्थन रिक्निसन (2001), अल्बी (2000) एवं बोनेट और विलियम्स (1998) के शोध परिणाम भी करते हैं। इन सभी शोधकर्ताओं ने अपने-अपने कार्यों में पाया कि पाठ्य पुस्तकें, प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रानिक मीडिया, बच्चों की पर्यावरण की समझ और अभिवृत्ति को प्रभावित करती हैं। इस कार्य में भी पर्यावरण के जिन बिम्बों को विद्यार्थियों ने दिखाया है वे पाठ्यपुस्तकों और अन्य माध्यमों जैसे प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा दिखाए जाने वाले पर्यावरण के लोकप्रिय बिम्ब हैं। जिस प्रकार से इन माध्यमों का जोर पर्यावरण के प्राकृतिक पक्षों को उभारना रहता है उसी के समान्तर सहभागी विद्यार्थियों के चित्रों को भी देखा जा सकता है।

इस कार्य के द्वारा यह भी पता चलता है कि विद्यार्थियों की अवधारणा प्रकृति केन्द्रित है वे पर्यावरण के प्राकृतिक घटक को सम्पूर्ण पर्यावरण के रूप में सम्प्रत्ययीकृत कर रहे है। उनके लिए पर्यावरण के घटक सूरज, नदी, वृक्ष आदि प्राकृतिक घटक ही हैं। सामाजिक घटक को वे संज्ञान में ले तो रहे हैं लेकिन वह उनके लिए पर्यावरण नहीं है, बल्कि

पर्यावरण का बदला हुआ रूप है, जो पर्यावरण में मौजूद है। उदाहरण के लिए विद्यार्थियों के इन कथनों को देखिए–

'हमारे घर और स्कूल पर्यावरण में स्थित है।'

'मेरे पर्यावरण में गाँव है।'

विद्यार्थीयों ने पर्यावरण को स्रोत के रूप में देखा है। यह 'स्रोत' मानव की हवा, पानी, आवास और भोजन की जरूरत को पूरा करता है। वे पर्यावरण के घटकों के सम्बन्ध को वे यांत्रिक और स्थैतिक तरीके से समझ रहे हैं अर्थात् ये घटक एक दूसरे से असंबंधित और बिना प्रभावित हुए जड़वत हैं। वे इन घटकों के अन्त:सम्बन्ध को नहीं देख रहे हैं। इस प्रकार से वे प्रकृति और समाज को ध्रुवीय स्थितियों में देख रहे हैं। विद्यार्थियों के विचारों में बार–बार उल्लेखित है कि पर्यावरण से हमें ऑक्सीजन और जल मिलता है। ये विचार 'विज्ञान की भाषा' में दिए गए तथाकथित वैज्ञानिक ज्ञान का प्रत्यावर्तन है, लेकिन इसकी अपनी सीमाएँ हैं। यह ज्ञान, पर्यावरण के दोहन और प्रकारान्तर से क्षरण को (विशेष रूप से इनके सामाजिक– आर्थिक पक्ष को) संज्ञान के दायरे से बाहर कर देता है (हकल, 1999)। इस पक्ष को संज्ञान में न लेने के कारण ही विद्यार्थियों के लिए पर्यावरण क्षरण, प्रदूषण का पर्याय बन जाता है और फिर वे कहते हैं–

'वृक्ष कटने से प्रदूषण होता है, जिससे बीमारी फैलती है।'

इस प्रकार से वृक्षों के कटने और इस जैसी अन्य गतिविधियों के प्रभाव को सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से देखना स्वत: ही गैर महत्वपूर्ण हो जाता हैं। सामाजिक पर्यावरण के प्रति सीमित दृष्टि के कारण वे मानव को सम–समूह मानते है। सम–समूह की यह मान्यता, पर्यावरण–मानव के सम्बन्धों और इसके प्रभावों को समान रूप से वितरित मानती है जबकि यथार्थ में पर्यावरण के उपभोग और प्रभावों को तय करने में सामाजिक–आर्थिक स्थिति की भी भूमिका होती है। इसी क्रम में विद्यार्थियों के इन कथनों को देखें–

'पर्यावरण उसे कहते हैं जिसमें सभी जीव जन्तु रहते हैं तथा उनसे अपना भोजन प्राप्त करते हैं।'

'दुनिया को पर्यावरण चारों तरफ से घेरे हुए हैं।'

'पर्यावरण ने हमें चारों ओर से ढका है।'

पर्यावरण पृथ्वी के चारों ओर फैला है।

ये सभी कथन पर्यावरण–मानव सम्बन्ध के उस नज़रिए को दिखाते हैं, जिसमें पर्यावरण और मानव दो अलग निकाय हैं। 'घेरने' का रूपक पर्यावरण की व्यापकता को तो दर्शाता

है लेकिन मानव की स्थिति को लेकर भ्रम पैदा करता है। वे मानव को पर्यावरण के निर्माता के रूप में देख रहे हैं लेकिन वह स्वयं भी इसका अंग हैं, इसका संज्ञान नहीं कर पा रहे हैं। यह कथन इसी स्थिति को व्यक्त करता है–

'मानव, पर्यावरण में है लेकिन पर्यावरण नहीं है।'

छात्र और छात्राएँ दोनों ही इस अध्ययन में सहभागी थे। पर्यावरण के घटकों के निरूपण और विवेचन की दृष्टि से दोनों ही समूहों में कोई महत्वपूर्ण अन्तर अवलोकित नहीं हुआ। उल्लेखनीय है कि छात्राओं के जो चित्र ग्रामीण पर्यावरण को दिखाते थे उन सभी में घरेलू कार्य में लगी हुई 'स्त्री' को अवश्य चित्रित किया है लेकिन जिन चित्रों में नगर के पर्यावरण को दिखाया गया है वहाँ केवल पुरुष दिखाए गए हैं। यह प्रवृत्ति 'जेण्डर और स्थान' के स्टीरियोटाइप को दिखाता है जिसमें एक स्थान विशेष को जेण्डर विशेष से जोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार से स्थान और उसकी रूढ़िबद्ध छवि को नगर के सन्दर्भ में भी देख सकते हैं जहाँ बड़े भवन, सुसज्जित पुरुष और वाहन आदि दिखाए गए हैं।

शिक्षा के लिए निहितार्थ

लेख के प्रारम्भ में स्पष्ट किया गया था कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा माना गया है कि शिक्षा के द्वारा बच्चों को पर्यावरण की समस्याओं के प्रति जागरूक करने का कार्य किया जाएगा। इस कार्य का लक्ष्य उनमें ऐसे आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास करना होगा कि जिससे वे यह समझ सकें कि पर्यावरण की बदलती दशाओं से वे स्वंय किस प्रकार से प्रभावित हो रहे हैं और अपने गतिविधियों से कैसे पर्यावरण को प्रभावित कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में यह कार्य में बच्चों की पर्यावरण की समझ के विभिन्न पक्षों के बारे में बताता है। इस शोध से ज्ञात होता है कि सहभागी विद्यार्थियों की पर्यावरण की समझ में एकरूपता न होकर विविधता है। वे पर्यावरण को प्रकृति प्रधान पर्यावरण से लेकर, मानवीय गतिविधि के प्रभाव से प्रदूषित पर्यावरण के आयाम में समझते हैं। उल्लेखनीय है कि पर्यावरण को प्रकृति के समान समझने की प्रवृत्ति की प्रबलता है। उनकी पर्यावरण की समझ केवल प्राकृतिक घटकों तक ही सीमित है। इस प्रकार की एकांगी समझ पर्यावरण की अवधारणा को प्रकृति तक सीमित करती है और मानव समाज को एक अलग निकाय में रखती है। इसी प्रकार के समझ की झलक विद्यार्थियों के विचारों में देख सकते हैं जहाँ वे पर्यावरण–मानव सम्बन्ध को उत्पादक–उपभोक्ता सम्बन्ध के रूप में देख रहे हैं। वे मनुष्य को एक ऐसे सक्रिय अभिकर्ता के रूप में देख रहे हैं जो पर्यावरण में बदलाव कर रहा है। उनके चित्रों और विचारों से ज्ञात होता है कि मानव को वे पर्यावरण में स्थित एक समरूप समूह का सदस्य मानते हैं। इसका एक संभावित

कारण यह है कि पर्यावरण से जुड़ी अवधारणाओं का शिक्षण 'विज्ञान' के शिक्षाशास्त्रीय ढाँचे में किया जाता है। आज भी प्राय: यह ढाँचा अपने लोकप्रिय रूप में 'विज्ञान' विषय और समाज के बीच अन्तर रखता है। इस आभासी अन्तर को कम करने के लिए 'विज्ञान-प्रौद्योगिकी-समाज' के अन्त:सम्बन्ध को समझना होगा। पर्यावरण और उससे जुड़े मुद्दों को पढ़ाते हुए प्राय: शिक्षक पर्यावरण की अवधारणा को पूर्वज्ञान और दैनिक संज्ञान का हिस्सा मानते हैं और शिक्षण के केन्द्र में पर्यावरणीय समस्याओं और चुनौतियों को रखते हैं। इस शोध कार्य के परिणाम उद्घाटित करते हैं कि जिन अवधारणों को हम सामान्य बोध का हिस्सा मान लेते हैं, उनकी समझ की विविधता और सूक्ष्मता चिन्तन पर दूरगामी प्रभाव डालती है। अत: पर्यावरण विषयक मुद्दों को पढ़ाते समय बच्चों की पर्यावरण की समझ को प्रारम्भ बिन्दु मानना चाहिए जिससे उनके 'वैकल्पिक अवधारणओं (Alternative Conceptions) को सम्बोधित किया जा सके। पर्यावरण की अवधारणा को केवल प्रकृति और पर्यावरण के भौतिक घटकों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि मानव-पर्यावरण सम्बन्ध के विविध पक्षों को सीखने के अनुभव से जोड़ना चाहिए। ऐसा करने पर ही विद्यार्थी मानव-पर्यावरण सम्बन्ध को स्थैतिक और यांत्रिक रूप में देखने के बजाय प्रावैगिक और पारस्परिक रूप में देख सकेंगे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा, 2005 की संस्तुति के अनुरूप हमें 'पर्यावरण अध्ययन' के उपागम से निकलकर 'पर्यावरण शिक्षा' के उपागम को अपनाना होगा। 'पर्यावरण अध्ययन' का उपागम उदारवादी और प्रगतिशील विचारधारा के अनुरूप 'प्रकृति अध्ययन', 'प्रकृति भ्रमण', पर्यावरण के अवयवों की विविधता का आनन्द जैसे शिक्षाशास्त्रीय नीतियों को अपनाता है। इस उपागम में पाठ्यसहगामी क्रियाएँ सीखने के अनुभव का स्त्रोत होती हैं। जबकि पर्यावरण शिक्षा का उपागम केवल 'पर्यावरण के खतरे और उसकी सुरक्षा की तैयारी' को केन्द्र में नहीं रखता बल्कि पर्यावरण व विकास के अन्त:सम्बन्ध, स्थानीय स्तर से वैश्विक स्तर तक के उसके प्रभाव, प्रभाव के सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक परिणामों को भी सम्मिलित करता है। इस प्रकार से यह उपागम दैनिक अनुभवों को पर्यावरण संपोषणीयता की दृष्टि से देखने की समझ देता है। विद्यार्थियों में पर्यावरण से जुड़े मुद्दों की समझ के विकास के लिए ज्ञान का स्थानान्तरण करने के बजाय उनके विचारों को जानने, उन्हें चर्चा में संलग्न करने, उनके विचारों को चुनौती देने, इस प्रकार से उन्हें पर्यावरण-विमर्शों से जोड़ने की नीति को अपनाना होगा। एक ओर सामाजिक दायरे में पर्यावरण से जुड़े मुद्दों के प्रति बेचैनी बढ़ रही है, दूसरी ओर इन मुद्दों की अपूर्ण और एकांगी व्याख्या स्थिति को और भी जटिल कर रही है। ऐसी स्थिति में हमें एक ऐसे शिक्षाशास्त्रीय प्रयास की आवश्यकता है जिसके द्वारा मानव-पर्यावरण के पारस्परिक और गत्यात्मक सम्बन्ध को

केन्द्र में रखकर उसके विविध पक्षों पर संवाद किया जा सके। इस प्रकार का संवाद स्वत: ही मानव-पर्यावरण सम्बन्ध उसके विविध पक्षों के प्रति व्यापक और गहन अर्न्तदृष्टि के विकास को दिशा देगा।

संदर्भ

एन.सी.ई.आर.टी.(2006)। पोजीशन पेपर नेशनल फोकस ग्रुन ऑन हैबिटॉट एण्ड लर्निंग। नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी.।

यूनेस्को (1992)। यू.एन. कॉन्फ्रेन्स ऑन इनवायरमेंन्ट एण्ड डेवलपमेण्ट: एजेण्डा 21। स्विटजरलैण्ड: यू.एन.

यूनेस्को (1995)। री-ओरिएण्टींग इनवायरमेंन्टल एजूकेशन फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेण्ट, फाइनल रिपोर्ट, इण्टर-रिजनल वर्कशॉप। एथेन्स: यू.एन.

आई.यू.सी.एन. (1991)। केंरिंग फॉर द अर्थ: ए स्ट्रेटेजी फॉर सस्टेनेबल लिविंग। ग्लैण्ड: आई.यू. सी.एन.

रिकिन्सन (2001), लर्नर्स एण्ड लर्निंग इन इनवायरमेंन्टल एजूकेशन: ए क्रिटिकल रिव्यू ऑफ द एवीडेन्स। इनवायरमेंन्टल एजूकेशन रिसर्च 7(3), 239-252।

अल्बी, ई. (2000)। ए वे ऑफ विजुलाइजिंग चिल्ड्रेन एण्ड यंग पीपलस् थॉटस् अबाउट द इनवायरमेंन्ट। इनवायरमेंन्टल एजूकेशन रिसर्च 6(3), 205-222।

बोनेट, एम. व विलियम्स, जे. (1998)। एनवायरमेंन्टल एजूकेशन एण्ड प्राइमरी चिल्ड्रेनस् एटीट्यूड टूअर्डस नेचर एण्ड इनवायरमेंन्ट। कैम्ब्रिज जनरल ऑफ एजूकेशन, 28 (2), 159-174

टिलबरी, डी. (1995)। इनवायरमेंन्टल एजूकेशन फॉर सस्टेनेबिल्टी। इनवायरमेंन्टल एजूकेशन रिसर्च 1(2), 195-212

हकल (1999)। लोकेटिंग एनवायरमेंन्टल एजूकेशन बिठवीन मॉडर्न कैप्टलिज्म एण्ड पोस्ट मॉडर्न सोशलिज्म। कनाडियन जरनल ऑफ इनवायरमेंन्टल एजूकेशन 4(1), 36-46

स्टीवेन्सन, आर.बी. (2007)। स्कूलिंग इन इनवायरमेंन्टल एजूकेशन: कन्ट्राडिक्शन एण्ड पैक्टिस। इनवायरमेंन्टल एजूकेशन रिसर्च 13 (2), 139-153

बराजा (1999)। चिल्ड्रेन्स ड्राइंग एबाउट इन्वायरमेण्ट। इनवायरमेंन्टल एजूकेशन रिसर्च 5(1), 49-67।

शिपर्डसन, डी.पी., वी, बी., प्रीडी, एम. हॉर्बर, जे. (2007)। स्टूडेण्ट्स मेण्टल मॉडल ऑफ इन्वायरमेण्ट। इनवायरमेंन्टल एजूकेशन रिसर्च 44(2), 327-348।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

भाषा की प्रकृति और समझ का रिश्ता

बीरेन्द्र सिंह रावत*

स्कूली पाठ्यक्रम की संकल्पना तथा प्रक्रिया में 'भाषा' का स्थान एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में देखा और समझा जाता रहा है। इसका महत्त्व सबसे पहले भाषा में निहित उस तत्व की वजह से है जो इंसान को अन्य जीवों से भिन्न करता है। इसके बाद भाषा को महत्त्व प्रदान करने वाले अन्य कारक आते हैं। पाठ्यक्रम की पूरी प्रक्रिया में भाषा सीधे तौर पर तथा अन्य विषयों के माध्यम से दुनिया को समझने तथा समझ को व्यक्त करने का महत्त्वपूर्ण जरिया है। स्कूलों में भाषा एक विषय के रूप में तथा माध्यम के रूप में पढ़ाई-सीखी जाती है। जब भाषा को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है तो वही प्रक्रिया 'भाषा-शिक्षण' के नाम से जानी जाती है। भाषा के माध्यम से अन्य विषयों को सीखने-सिखाने के क्रम में यह माध्यम के तौर पर जानी जाती है। भाषा-शिक्षण तथा माध्यम-भाषा दोनों ही रूपों में भाषा विशेष मानवीय गुण के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करती है।

भाषा सीखने, उसका उपयोग तथा अर्जन करने की क्षमता हर इंसान में जन्मजात होती है। जन्म के कुछ महीनों बाद बच्चा भाषा सुनने लगता है तथा कुछ और महीनों बाद धीमे-धीमे उसका उपयोग भी करने लगता है। तीन साल की उम्र तक आते-आते वह अपनी जिन्दगी से जुड़े मसलों में भाषा का उपयोग करने लगता है। वह अपनी समस्याओं को सुलझाने, समस्या रखने, चुनौती देने, आग्रह करने, जिज्ञासा व्यक्त करने, संबंधों को इंगित करने के लिए भाषा का उपयोग करने लगता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसके भाषाई उपयोग का दायरा बढ़ने लगता है। यह दायरा किस गति से बढ़ेगा यह उसके वातावरण पर निर्भर करता है। वातावरण में यह भी शामिल है कि भाषाई उपयोग के संदर्भ में उसके सम्मुख किस प्रकार की अपेक्षाएँ हैं तथा उन पर पूरा उतरने हेतु किस प्रकार के साधन तथा प्रेरणाएँ उपलब्ध हैं। यह संभव है कि दो भिन्न परिवेशों में पलने वाले बच्चों के समक्ष भाषाई उपयोग की अपेक्षाएँ भिन्न हों। एक बच्चे से यह उम्मीद की जाती हो कि वह वृक्षों के बारे में अच्छी जानकारी रखे। इसके लिए

*शिक्षाशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जरूरी है कि वह विभिन्न वृक्षों को नाम से जाने? वृक्षों के गुणों को समझने तथा धारण करने के लिए उसके पास उपयुक्त भाषा हो जबकि दूसरे बच्चे से यह उम्मीद की जा सकती है कि वह इसी किस्म की जानकारी तथा भाषाई ज्ञान मछलियों के बारे में रखे। हम अनुमान लगा सकते हैं कि परिवेश तथा परिवेश द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली अपेक्षाएँ बच्चे तथा बच्चियों की भाषा को आकार तथा विस्तार देने के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

अब सवाल यह उठता है कि यदि बच्ची/बच्चा अपने परिवेश द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली अपेक्षाओं के अनुसार भाषा का अर्जन कर लेती/लेता है तो स्कूल जैसी संस्थाओं की आवश्यकता क्यों महसूस की जाती रही है? क्या हम स्वीकार करते हैं कि समाज के पास अपेक्षाकृत वृहद अपेक्षाएँ हैं जिन्हें ध्यान में रखकर बच्चियों/बच्चों का भाषाई संस्कार विकसित किया जाना चाहिए? हम स्वीकार करते हैं कि दुनिया को समझने के तौर-तरीकों की उपलब्धता की नजर से एक परिवार, समाज की तुलना में कम समृद्ध हो सकता है। समाज की इसी समृद्धि का लाभ अधिकतम बच्चियों तक पहुँचाने हेतु स्कूलों के अस्तित्व को स्वीकृति मिली हुई है। स्कूल स्वयं को तथा विभिन्न परिवेशों को समझने में विभिन्न परिवेशों से आई बच्चियों की किस प्रकार मदद कर सकता है। इस चुनौती को समझने के लिए भाषा से जुड़े कुछ बुनियादी सवालों तथा प्रक्रियाओं पर टिककर विचार करना अपेक्षित है।

यह आलेख जेम्स ब्रिटन द्वारा लिखी गई किताब-'भाषा और अधिगम' के आधार पर तैयार किया गया है।

प्रतीकीकरण

ब्रिटन ने भाषा तथा मानव जाति के व्यवहारों के मध्य संबंधों की पड़ताल गंभीरता से की है। मानव जाति, दूसरे जानवरों की तुलना में एक आधार पर भिन्न है कि वह वातावरण के साथ अपने आदान-प्रदान को प्रतीकों (Symbols) के द्वारा व्यक्त कर सकती है। मानव जाति और जानवरों के बीच भिन्नता की व्याख्या और तरीकों से भी की जा सकती है। भाषा, अनुभवों, कल्पनाओं, विचारों को प्रतीकों में ढ़ालने के अनेक तरीकों में से एक तरीका है। हम भाषा की विशिष्टता की व्याख्या प्रतीकों में व्यक्त करने के दूसरे तरीकों को समझे बिना नहीं कर सकते । भाषा को समझने के लिए हमें भाषा द्वारा अनुभवों आदि को प्रतीकों में व्यक्त करने की प्रक्रिया को भी समझना होगा। कुछ दार्शनिकों ने तर्क करने को इंसान का खास गुण माना है। ब्रिटन जर्मन दार्शनिक अर्नस्ट

कासीरर (1944) के हवाले से इस दावे को खारिज करते हैं। तर्क मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन की समृद्धता तथा विविधता को समझाने के लिए बहुत अपर्याप्त शब्दावली है। इसलिए मनुष्य को तार्किक जानवर (animal rationale) के तौर पर परिभाषित करने के स्थान पर प्रतीक गढ़ने वाने जानवर (animal symbolicum) के रूप में परिभाषित करना चाहिए। ऐसा करने से हम उसकी विशिष्टिताओं की समझ सकेंगे। प्रतीकात्मक विचार तथा प्रतीकात्मक व्यवहार मानवीय व्यवहार में सबसे खास लक्षण हैं और इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मानवीय संस्कृति की सम्पूर्ण प्रगति इन्हीं बातों पर आधारित है।

मानवीय संस्कृति की विविधता और समृद्धि के विविध रूपों को समझने के लिए तर्क एक अपर्याप्त (इनएडीक्वेट) शब्द है। परंतु ये समस्त रूप प्रतीकात्मक रूप हैं। इसलिए मनुष्य को तार्किक पशु के रूप में परिभाषित करने के स्थान पर पशु सिंबोलिकम के रूप में परिभाषित करना चाहिए। ऐसा करके हम उसके विशिष्ट प्रभेदों (प्रभेदक अभिलक्षणों) को पहचान सकेंगे और मानव के लिए खुले नए मार्ग–सभ्यता के मार्ग को समझ सकेंगे।... यही मानव जीवन का विशिष्ट प्रभेदक अभिलक्षण है कि वह प्रतीकात्मक ढंग से सोच–विचार कर सकता है और निस्संदेह संपूर्ण मानव जाति का संपूर्ण सांस्कृतिक विकास इसके आधार पर खड़ा है (ब्रिटन : 15)।

बोलने तथा तर्क करने की योग्यता निश्चित तौर पर इंसानी जिन्दगी की खास विषेषताएँ हैं लेकिन इससे गहरे जाने पर पता चलता है कि ये दोनों योग्यताएँ प्रतीकों को उत्पन्न तथा इस्तेमाल करने की योग्यता तथा वास्तविकता का निरूपण (representation) कर सकने की योग्यता पर आधारित हैं। हम दुनिया को प्रतीकों द्वारा जैसे निरूपित करते हैं, वैसी दुनिया के प्रति ही 'प्रतिक्रिया' करते हैं। इस प्रतीकात्मक निरूपण में बदलाव से वास्तविक दुनिया भी बदलती है क्योंकि प्रतीक हमारी उम्मीदों तथा उससे उपजे व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

दो व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला संसार का निरूपण भिन्न होता है। केवल इसलिए नहीं कि दुनिया ने दोनों को अलग तरह से इस्तेमाल किया होगा बल्कि इसलिए कि दुनिया के बारे में दोनों के अनुभव भिन्न होंगे। इसकी एक वजह यह भी है कि दोनों के निरूपण करने के तरीके भी भिन्न हैं। इंसान कैमरा नहीं हो सकते। एक ओर जहाँ हम संसार से चीजें अपने भीतर ले रहे होते हैं वहीं हम अपनी इच्छाओं, आशाओं, भयों, उम्मीदों को प्रक्षेपित (project) भी कर रहे होते हैं। हमारे द्वारा किसी स्थिति का

निरूपण–इंटरनलाइजिंग तथा एक्सटरलेनाइजेषन–दो प्रक्रियाओं का परिणाम होता है। इसलिए साझा स्थितियों के निरूपण भी भिन्न होते हैं। यानि एक ही घटना के दृष्टा उसका निरूपण अलग तरह से कर सकते हैं। किसी क्षण का मेरे द्वारा किया गया निरूपण उस क्षण के मेरे व्यक्तित्व के अभिन्न पहलुओं पर निर्भर करता है। इन अभिन्न पहलुओं में मेरे विगत अनुभव अनिवार्य रूप से शामिल होंगे। मैं दुनिया को इस आलोक में देखता हूँ कि दुनिया के बारे में विगत अनुभवों से मैंने क्या उम्मीद करना सीखा है। इस तरह मेरे विगत अनुभवों का संचित रिकॉर्ड तथा निरूपित करने का तरीका मेरे निरूपण को आकार देते हैं। ब्रिटन ने दुनिया के 'निरूपण' में 'उम्मीद' को महत्त्वपूर्ण माना है। दुनिया के निरूपण में उम्मीद का क्या अर्थ है? उम्मीदें वे परिकल्पनाएँ हैं जिन्हें वास्तविकता से सामना होने पर परीक्षण हेतु रखा जाता है। परीक्षण का परिणाम न केवल वर्तमान क्षणों के निरूपण को प्रभावित करता है बल्कि दुनिया के बारे में संपूर्ण संचित निरूपण (Accumulated Representation) को भी प्रभावित करेगा। वास्तविकता के साथ होने वाला हर सामना अनुभव द्वारा सीखे गए का प्रयोगिक तौर पर परीक्षण करने का अवसर प्रदान करता है।

अपने अनुभवों पर विचार करना इंसान का सामान्य व्यवहार है। व्याख्या करना इस व्यवहार का एक पहलू है। घटनाओं की लगातार व्याख्या से अनुभव बनता है। अनुभव मात्र लगातार घटने वाली घटनाओं से ही नहीं बनता। हमारे चारों ओर घटने व घटनाएँ अनुभव नहीं बनातीं, घटनाओं की व्याख्या तथा पुनर्व्याख्या से अनुभव बनता है। जैसे–जैसे यह प्रक्रिया आगे बढ़ती है जीवन के अनुभव समृद्ध होते जाते हैं।

घटनाक्रम का निरंतर निर्माणशील होना (कांस्ट्रइंग) ही अनुभव है। इसका आधार केवल घटना का निरंतर घटना ही नहीं होता।... किसी मनुष्य के चारों ओर जो घटित होता है उससे उसका अनुभव संसार नहीं बनता बल्कि जो कुछ घटना है उसका निर्माणशील होना, पुनर्निर्माणशील होना ही उसका अनुभव–संसार होता है (वही : 19)।

घटनाएँ स्वयं किसी अनुभव को जन्म नहीं देतीं। घटनाओं पर किया जाने वाला चिंतन घटनाओं को अनुभवों में रूपांतरित करता है। घटनाओं पर व्याख्या से दुनिया के बारे में एक खाका निर्मित किया जाता है। इस निर्मित के आधार पर भविष्य में घटने वाली घटनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। इस निर्मिंति में भविष्य कथन कर सकने वाले औजार (apparatus) को सुधारते जाना एक अनिवार्य सरोकार है। यही वह विचार है जो जीने को सीखने जैसा, तथा सीखने को अनुभवों से सीखने जैसा, तथा जो

विगत अनुभवों को वर्तमान तक लाने के महत्त्व को रेखाँकित करता है। केवल प्रतीकों के जरिए हर संभावित तथा विगत संभावनाओं पर विचार किया जा सकता है, क्योंकि प्रतीकों की मदद से अन्तरों को केवल पहचाना ही नहीं जा सकता बल्कि चेतना में स्थिर भी किया जा सकता है।

हमारे द्वारा किया गया विगत अनुभवों का निरूपण एक संदर्भ बिन्दु का गठन करता है जिसके माध्यम से हम वर्तमान के जाने-पहचाने पहलुओं की पहचान कर लेते हैं (भीड़ में दोस्त का चेहरा)। वर्तमान घटनाओं की लगातार व्याख्या से संदर्भ बिन्दु में नयापन आता है। भाषा का विशिष्ट संदर्भ बनाए बगैर हम निरूपण की चर्चा अधिक नहीं कर सकते। भाषा, निरूपण के अनेक तरीकों में से एक, लेकिन महत्त्वपूर्ण तरीका है। हममें से अधिकाँश के लिए भाषा ऐसा तरीका है जिसमें बाकी तरीके दक्षता से जुड़ जाते हैं। भाषा का सबसे सहज रूप बातचीत है। हम बातचीत का उपयोग अपने तथा दूसरों के निरूपण को सुधारने के लिए करते है।

एडवर्ड सापियर (1961) अमरीकी भाषाविद् ने भाषा को संप्रेषण का साधन मानने के विचार का वैकल्पिक विचार पेश किया है।

यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि वास्तविकता का उच्चारणपरक प्रतीकात्मक ढंग से निरूपण करना ही भाषा है।... वास्तविकता को समझने के लिए उसका मौखिक रूप में निरूपण यथार्थ को प्रत्यक्ष और यथारूप (एडहाक) ग्रहण करने के स्थान पर उसके अनुभव को परिचित रूप के माध्यम से ग्रहण करना है (वही : 21 पर उद्धरित)।

यह स्वीकार कर लेना सबसे उचित होगा कि प्राथमिक रूप से भाषा वास्तविकताओं को प्रतीकों के रूप में देखने की प्रवृति की वाचिक प्रस्तुति है।... वाचिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुति का अर्थ है अनुभव को जाने-पहचाने रूप में ढालकर, न कि प्रत्यक्ष रूप से सामना करके, वास्तविकता पर नियंत्रण स्थापित करने की प्रवृति। सापियर के इस विचार को छोटे-छोटे सवालों में विभाजित करने से इसे चेतना में उतारना अपेक्षाकृत सरल हो सकता है। वाणी का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य क्या है? वाणी का सबसे प्राथमिक कार्य वास्तविकता को प्रतीकों में ढालना है। हम वास्तविकता को प्रतीकों में क्यों ढालते हैं? ऐसा करने से वास्तविकता को संभालना संभव हो पाता है। संभाल पाने की स्थिति के बाद ही वास्तविकता पर क्रियाशील हुआ जा सकता है। क्या हम वास्तविकता का निरूपण इसे संभालने तथा इस पर क्रियाशील होने मात्र के लिए करते हैं? मनुष्य द्वारा प्रतीक-निर्माण के विचार को इन गतिविधियों तक सीमित करना गलती होगी। वास्तव

में यदि हम मनुष्य को अपने संसार का निरूपण करने वाले के रूप में देखते हैं ताकि वह इस निरूपण पर क्रियाशील हो सके तो अन्य तरह की गतिविधियों का रास्ता भी उसके लिए खुला होता है: वह सीधे तौर पर स्वयं निरूपण के अनुसार क्रियाशील होता है। वह इस बात का चुनाव भी कर सकता है कि वह निरूपण पर क्रियाशील हो तथा संसार के अपने द्वारा किए गए निरूपण में सुधार करे। यह कार्य वह लगातार नए प्रतीकों को गढ़कर करता है। लेंगर ने इंसान को तेजी से प्रतीक गढ़ने वाले (Proliferater of symbols) की संज्ञा दी है। उनका मानना है कि इंसानी मस्तिष्क प्रतीकों की अविरल धारा से निर्मित होता है।

यह बात पहले भी कही जा चुकी है कि दुनिया को निरूपित करने की और भी प्रणालियाँ हैं। फिर भाषा निरूपण की अन्य प्रणालियों से किस प्रकार भिन्न है? किस आधार पर इसके 'मुख्य-प्रणाली' होने का दावा किया जाता है? भाषा अनुभवों को व्यक्त करने की अत्यन्त व्यवस्थित प्रणाली है और यह निरूपण के अन्य तरीकों को व्यवस्थित करने में भी सहायक होती है।

अनुभवों को रचने में घटनाओं का स्वयं में योगदान नहीं होता। घटनाओं पर चिन्तन करने से अनुभवों का निर्माण होता है। चिन्तन को प्रतीकों के आधार पर आकार तथा गति प्रदान की जाती है। ब्रुनर एवं अन्य (1956) का उद्धरण देते हुए ब्रिटन कहते हैं कि इस बात का इंसान के लिए कोई मूल्य नहीं है कि कोई B घटना, किसी A घटना के बाद घटी। इसका कोई मूल्य नहीं है क्योंकि घटना A कभी भी दोबारा नहीं घटेगी। लेकिन इस बात की पहचान कर लेना बिलकुल अलग मामला है कि B प्रकार की घटना A प्रकार की घटना के बाद घटती है। अनुभव से यही सीखा जाता है। जब कभी भी B प्रकार की घटना का पूर्वानुमान लगा सके। यहाँ पर सवाल उठता है कि जानवर भी व्यवहारों की ऐसी ऋंखला को पहचान लेते हैं जिसमें A प्रकार की घटना के बाद B प्रकार की घटना घटती है। (वही : 24)। ऐसे में इंसान और जानवर में क्या अन्तर है? इंसान किसी अन्य जीव की तुलना में अनन्त संख्या में अधिक कोटियों (categories) (टिप्पणी-1)को निर्मित कर सकते हैं, संभाल सकते हैं तथा इस्तेमाल कर सकते हैं। भाषा, इंसान के लिए कोटियाँ बनाने का प्रमुख साधन है। कोटियाँ बनाने का यही काम है जो भाषा की भूमिका को हमारे अनुभवों के निरूपण को व्यवस्थित करने वाले के रूप में स्थान दिलवाता है। भाषा के द्वारा हम वस्तुओं तथा घटनाओं का वर्गीकरण करते हैं। इनका वर्गीकरण बना बनाया नहीं होता। जिन कोटियों में इन्हें वर्गीकृत किया जाता है वे वही

कोटियाँ होती हैं जिनमें हम उन्हें वर्गीकृत करते हैं। कोटियाँ स्वत: निर्मित नहीं होती हैं। वे जरूरतों के हिसाब से बनाई तथा बदली जाती हैं। एक शिशु दुनिया को उन्हीं श्रेणियों तथा कोटियों में बाँटकर देखता है जिनमें उसके माता-पिता देखते हैं। 'भाषा का स्वतंत्र उपयोग' शब्द गुच्छों का विशेष अर्थ तथा महत्त्व है। आपकी पालतू बिल्ली या कुत्ता जब आपकी आवाज सुनकर कुछ विशेष प्रकार की क्रिया करता है तब उसको आपकी भाषा का सीखना नहीं कहा जा सकता। वह तो तब ही कहा जा सकता है जब वह आपके या किसी अन्य आदमी या जानवर के प्रति उस भाषा का स्वतंत्र उपयोग करे। 'स्वतंत्र व्यवहार' का अर्थ है कि वह उन्हीं शब्दों को नये संदर्भों और नये वाक्य-विन्यासों में प्रयोग करे। एक ही शब्द या वाक्य को बार-बार दोहराना यह नहीं बताता कि उसका अर्थ समझा गया है, और न ही किसी वाक्य या शब्द या ध्वनि-विशेष होने पर किसी क्रिया विशेष का करना यह बताता है। इसी भेद को कई दार्शनिकों ने संकेत (Sign) और प्रतीक (Symbol) का भेद बताकर व्यक्त किया है। मनुष्य प्रतीकों को समझता है, जबकि पशु-पक्षी संकेत चिन्हों से आगे नहीं बढ़ पाते। (दयाकृष्ण. 1997)। मनुष्य घटनाओं के खास तत्वों को वाचिक प्रतीकों के रूप में धारण कर लेते हैं तथा उसी तरह की घटनाओं को इन प्रतीकों के जरिए समझते हैं। यहाँ सवाल यह उठता है कि क्या सभी मनुष्य अपने आसपास की वस्तुओं का वर्गीकरण एक-सा करते हैं? ब्रिटन के अनुसार मालिनोवोस्की (1923) का विचार है कि अलग-अलग समुदाय अपने आस-पास की वस्तुओं का वर्गीकरण अपनी जरुरतों तथा प्रयोजनों के अनुसार करते हैं। तमाम पेड़ों में से वे उन्हीं पेड़ों को विशिष्ट नाम देते हैं जिनसे उन्हें काम पड़ता है बाकी पेड़ों को वे 'हरी चीजों' में वर्गीकृत कर देते हैं। इसी प्रकार खाई जा सकने वाली मछलियों को वे खास नाम देते हैं तथा बाकी मछलियों को 'तैरने वाली चीजों' में वर्गीकृत कर दते हैं। लोगों या समुदायों की जरूरत तथा प्रयोजनों में बदलाव या अन्तर से वर्गीकरण में अन्तर पड़ जाएगा (वही : 25)।

दुनिया को समझने के लिए कोटियाँ बनाना आवश्यक है। हम दुनिया की वास्तविकताओं से सीधे-सीधे नहीं निपट सकते। इसके लिए इन्द्रिय-आँकड़ों को कोटियों में विभाजित करना पड़ता है। कोटियाँ मनुष्य द्वारा बनाई जाती हैं। इस बात को समझने का एक अच्छा उदाहरण यह है कि हम रंगों को किस तरह वर्गीकृत करते हैं। ब्रुनर (ब्रुनर एवं अन्य, 1956, ब्रिटन में उद्धरित) ने भौतिकशास्त्रियों के इस अनुमान कोश को रिकॉर्ड किया है कि मानव आँख 70 लाख किस्म के रंगों में फर्क कर सकती

है। लेकिन यह वक्तव्य इंसानी आँख की फर्क कर सकने की क्षमता के बारे में है न कि इंसानी प्रयोजनों के बारे में। जिस समुदाय या इंसान का काम जितनी कोटियाँ बनाकर चल जाता है वह उतनी ही कोटियाँ बनाता है। यह कहा जाता है कि एस्किमों की भाषा में बर्फ शब्द के लिए सात शब्द हैं क्योंकि बर्फ उनके जीवन में हमसे अधिक देखी तथा उपयोग की जाती है।

घटनाओं की जटिलता तथा अनूठेपन को केलीडोस्कोप की मदद से समझा जा सकता है। केलीडोस्कोप में बनने वाला प्रत्येक पैटर्न अनूठा तथा दोहराया न जा सकने वाला होता है। यदि अनूठेपन को समरूपता के आधार पर समूहीकृत न किया जाए तो हम न तो कोई उम्मीद बाँध सकते हैं और न ही पूर्वानुमान लगा सकते हैं। इस तरह किसी भी घटना से कोई अर्थ नहीं निकाल सकते। घटनाओं के केलीडोस्कोपिक होने का अर्थ यही है कि प्रत्येक घटना अपने किस्म की एक ही है जिसे दोहराया नहीं जा सकता। केलीडोस्कोपिक प्रकृति की कैद से मुक्त होने के लिए सबसे पहले इन्द्रिय आँकड़ों की धारा को टुकड़ों में काटा जाता है। इन टुकड़ों के बीच समानताओं को पहचानकर निरूपण तैयार किया जाता है।

कोटियों के पदक्रम का रेखांकन

वनस्पति

↓

पौधा

फूल

गुलाब

सफेद गुलाब

इंसान और जानवर के बीच एक महत्त्वपूर्ण फर्क है कि इंसान अवधारणाओं का निर्माण कर सकता है तथा अवधारणाओं को कोटियों में वर्गीकृत कर सकता है। यह ऐसा गुण है जो उसे जानवर की तुलना में निश्चित रूप से श्रेष्ठ बनाता है। इंसानी श्रेष्ठता का एक

और लक्षण यह है कि वह विभिन्न कोटियों में संबंध जोड़ सकता है। भाषा के कारण अवधारणाओं में पयार्यवाचिकता, विलोमता आदि के संबंध हो सकते हैं। अवधारणा में पदक्रम (hierarchy) एक अन्य संबंध है। जैसे गुलाब फूल है। लेकिन वह 'फूल' नामक अवधारणा का उपसमुचय भी है। फूल पौधे नामक अवधारणा का उपसमुचय है। पौधा 'वनस्पति' नामक अवधारणा का उपसमुचय है। प्रत्येक शब्द सामान्यीकृत निरूपण (Generalised representation) होता है। लेकिन इस सामान्यीकरण में भी पदक्रम होता है। यानि सामान्यीकरण के भी विभिन्न स्तर होते हैं।

इस बात को बाद में बच्चे के भाषाई विकास तथा सीखने के संदर्भ में समझा जाएगा। इस पूरी चर्चा से एक बात साफ है कि इंसान संसार के निरूपण के लिए किसी अन्य एजेंसी की तुलना में मानसिक प्रक्रियाओं का अधिक ऋणी है।

अभी तक जो चर्चा हुई है उसमें 'निरूपण' को बहुत महत्त्व दिया गया है। 'संसार की रूपरेखा है।' का अर्थ है? निरूपण 'वाचिक तौर पर संगठित संसार की रूपरेखा है।' वाचिक तौर पर संगठित होने का अर्थ है कि यह संगठन शब्दों की तुलना में अधिक सार्थक है। यह रूपरेखा कई प्रकार के तंतुओं से बुनी होती है। इसमें इन्द्रिय बिंब, आत्मसात किए गए अनुभव, ध्वनि, गति, स्पर्श, गंध, स्वाद, पुराने अनुभव, पूर्व-वाचिक पैटर्न आदि शामिल होते हैं। इसमें मिथक, धर्म, कला, संस्कृति, विश्वास से मिले बिंब शामिल होते हैं। किसी वर्तमान घटना में इन सबके साथ प्रवेश किया जाता है तथा चुनौती मिलने पर संसार के निरूपण को सुधारा भी जाता है। ऐसा इसलिए जरूरी है ताकि हम अपने भविष्य-कथन को अधिक सच्चा बना सकें।

इंसान की एक मौलिक जरूरत है जो अन्य जीवों में नहीं पाई जाती और जो उसके सभी गैर-जीव संबंधी लक्ष्यों, उसकी उत्कंठायुक्त कल्पनाओं, मूल्य के प्रति उसकी चेतना, उसके पूरी तरह से गैर-व्यावहारिक उत्साहों को प्रेरित करती है। यह बुनियादी जरूरत, जो निश्चित रूप से केवल इंसान में स्पष्ट रूप से पाई जाती है, 'प्रतीकों को गढ़ने की जरूरत है।'

मेरा विश्वास है कि मानव की एक आदिम आवश्यकता होती है जो संभवत: जानवरों की नहीं होती। यह अप्रत्यक्ष तौर पर उसके समस्त अजैविक उद्देश्यों, उसकी कभी न समाप्त होने वाली कल्पनाओं, उसके मानदंडों की सचेतनता, उसके पूर्ण रूपेण अव्यावहारिक उत्साह की शुरूआत करती है,.. मानव की यह आदिम आवश्यकता

'प्रतीकीकरण की आवश्यकता' है (वही : 35-36 पर सूसेन लेंगर, 1960 उद्धरित)।

प्रतीकों को गढ़ने में भाषा सीधे तौर पर मदद करती है। भाषा सीखने की शुरुआत सुनने से होती है। शब्दों को सुनकर शिशु ध्वनियों को वस्तु के साथ साहचर्य स्थापित करता है। शुरू में शब्द वर्गीकरण करने की भूमिका नहीं निभाते। शुरुआत में कोई शब्द किसी विशिष्ट वस्तु को इंगित करता है और ऐसा लगता है कि वह ध्वनि उस वस्तु का अन्तर्निहित गुणधर्म है। शिशु केवल ध्वनि तथा वस्तु में ही साहचर्य स्थापित नहीं करता बल्कि वस्तु के अन्य गुणों जैसे– उसकी कठोरता, चिकनापन, रंग, आकार, उस पर बनी कलाकृति आदि तथा ध्वनि में भी साहचर्य स्थापित करता है। ल्यूब्लिंसकाया (1957) द्वारा 12-14 महीने के बच्चे के बारे में दर्ज रिपोर्ट के अनुसार–उस बच्चे के लिए परिचित 'कप' शब्द मात्र एक कप का 'नाम' था–एक छोटा, सफेद धब्बों वाला गुलाबी कप। जब एक बड़े सफेद कप को, जिसके साथ शिशु ने अभी तक कप शब्द का संबंध नहीं बनाया था, उसके सामने रखा गया, और उससे पूछा 'कप कहाँ है?' शिशु ने इधर-उधर अपने हाथ लहराए और परेशान होकर अपनी माँ की ओर देखा, उसके प्रत्यक्षीकृत ज्ञान में अभी सामान्यीकरण का गुण नहीं आया था। (वही : 41)। इस बच्चे के लिए 'कप' शब्द का विशिष्ट अर्थ था। वह कप की सामान्यीकृत अवधारणा के साथ, जिसमें विभिन्न रंग, आकार, डिजाइन के कप शामिल हों, इस शब्द का संबंध नहीं बन पाया था। ऊपर उद्धरित रिपोर्ट शिशु की एक अवस्थिति को दर्ज करती है जिसमें कोई ध्वनि किसी विशिष्ट वस्तु का प्राकृतिक गुणधर्म लगती है। लेकिन उम्र बढ़ने के साथ जब शिशु अपने मस्तिष्क का अधिक उपयोग करने लगता है तब वह अनेक विशिष्ट वस्तुओं में से उभयनिष्ठ तत्वों के आधार पर उनका वर्गीकरण करने लगता है। पहले जो मात्र घटनाएँ थीं अब वे अनुभव में बदलने लगीं। इसी के साथ उसके द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले शब्दों की परिधि का विस्तार होता है। अब शब्द विशिष्ट वस्तु की जगह किसी कोटि को दर्शाते हैं तथा वह कोटि उपयोग या अन्य किसी आधार पर भिन्न श्रेणी में रख दी जाती है। वाइगोत्स्की का मानना है कि भिन्न श्रेणी बन जाने पर भी 'श्रेणी' के रूप में गुणों की विशिष्टता बरकरार रहती है। 'कप' एक विशिष्ट कप को दर्शाने के स्थान पर यदि 'श्रेणी' को दर्षाए तब भी श्रेणी के रूप में उसकी विशिष्टता बनी रहती है जो उसे अन्य श्रेणियों से अलग पहचान देती है। इसी आधार पर वाइगोत्स्की का मानना है कि यदि किसी बच्चे से कहें कि 'गाय' की जगह 'स्याही' या 'स्याही' की जगह 'गाय' का उपयोग करो तो वह ऐसा करने से इंकार कर देगा क्योंकि स्याही लिखने के काम आती है और गाय दूध देती है। यानि दोनों का

प्रयोजन भिन्न होने से उनका वर्गीकरण अलग कोटि में किया गया है। बच्चों के लिए किसी शब्द के मायने भाषा और दुनिया दोनों के अनुभवों में बढ़ने के साथ बदलते हैं। वाइगोत्स्की (1962) के अनुसार–

बच्चे के लिए कोई भी शब्द उस वस्तु का एक अटूट हिस्सा होता है जिसे वह प्रकट करता है। यह आदिम भाषिक चेतना का आरंभिक गुण प्रतीत होता है। हम सब उस ग्रामीण व्यक्ति की कहानी से परिचित हैं जिसके आश्चर्य का मूल कारण यह था कि ज्ञानियों ने ग्रह, तारों आदि का नामकरण कैसे किया न कि यह जानना कि उनका आकार कैसा है और उनकी गति कैसी है। सामान्य प्रयोगों से भी यह पता चल जाता है कि स्कूल जाने से पहले बच्चे वस्तुओं के नामों की उनके गुणों से व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार एक जानवर को 'गाय' इसलिए कहते हैं कि उसके सींग होते हैं जबकि 'बछड़े' के सींग अभी भी छोटे हैं।... जब उनसे पूछा गया कि क्या वस्तुओं के नाम परस्पर बदले जा सकते हैं? जैसे– गाय का 'स्याही' और स्याही का 'गाय'। उनका उत्तर होता है नहीं 'क्योंकि स्याही से हम लिखते हैं और गाय दूध देती है' (वही : 41)।

प्राथमिक अनुभव तथा प्रतीकीकरण

स्कूल जाने की शुरूआत, भाषा के उपयोग में 'अन्तरों के विकास' की प्रक्रिया है। स्कूली जीवन भाषा की निरंतरता तथा सुधार की प्रक्रिया का ही हिस्सा है। स्कूल दृष्टा तथा भागीदार के रूप में बच्चों की भूमिका को विस्तार तथा गहराई प्रदान करता है। स्कूल को उससे पहले के अनुभवों की निरंतरता में देखने में जहाँ यह दृष्टिकोण काम कर रहा है कि अनुभव की धारा को काटकर बिलकुल अलग नहीं किया जा सकता, वहीं जीवन क्रम की वह सघनता भी है जिसके कारण हम स्कूल में संचित अनुभवों को नजरअंदाज कर सकने का साहस नहीं कर सकते। उनका मानना है कि कक्षाओं को बाहर की दुनिया में सम्मिश्रित हो जाने के साथ-साथ स्कूली अधिगम प्रक्रियाओं को जन्म तथा जीवनभर चलने वाली अधिगम प्रक्रियाओं में सम्मिश्रित हो जाना अनिवार्य है। हम स्कूली शिक्षा को अंतरिम पड़ाव की तरह नहीं देख सकते जिसमें अपरिपक्वता से परिपक्वता की ओर जाने के लिए निर्देश और प्रशिक्षण दिया जाता है। स्कूली अधिगम प्रक्रियाओं को शिशुकाल में हुए अनुभवों पर आधारित होना अनिवार्य है। साथ ही इसे वयस्क जीवन में लगातार होने वाले अनुभवों का पोषण करना चाहिए। बातचीत को कक्षा- प्रक्रियाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान देना अनुभवों को पोषित करने का सबसे सहज तरीका है।

बातचीत शिशुकाल में सीखने का प्रमुख साधन है। शिशु बातचीत द्वारा सीखता है तथा बातचीत द्वारा बातचीत करना भी सीखता है। बातचीत से शिशु दुनिया के बारे में समझ बनाते हैं तथा अपनी बातचीत करने की दक्षता में सुधार भी करते हैं। ब्रिटन ने जोर देकर कहा है कि स्कूल में भाषा सीखने की प्रक्रिया को इन्हीं गतिविधियों पर आधारित होना चाहिए तथा स्कूल को इन्हीं गतिविधियों को विस्तार देना चाहिए। ब्रिटन का मानना है कि भाषा सीखने की जड़ें स्वयं हासिल किए गए यानि प्राथमिक अनुभवों में होती हैं। इस प्रकार अनुभवों से गुजरते हुए हमारे पास दुनिया को समझने के लिए विभिन्न कोटियाँ संचित होती हैं। वर्तमान घटनाओं में से अर्थ इसी प्रकार के संचित कोष की मदद से निकाले जाते हैं। बड़े होने पर हमें यह जरूरत भी महसूस होती है कि हम अन्य लोगों द्वारा किए गए अनुभवों को समझ सकें। इस काम के लिए हमें भाषा पर निर्भर रहना पड़ता है। भाषा के जरिए ही दूसरों द्वारा किए गए अनुभवों यानि द्वितीयक अनुभवों का असीमित क्षेत्र हमारे सामने खुलता है। दूसरे के अनुभवों को अपना बनाने की गुणवत्ता भाषा के उपयोग पर निर्भर करती है। यह इस बात पर निर्भर करती है कि हमारी भाषा तथा हमारे प्राथमिक अनुभवों में कितना जीवंत संबंध है। उपरोक्त चर्चा को यदि सवाल के रूप में रखा जाए तो कहा जा सकता है कि भाषा सीखने की दृष्टि से 'प्राथमिक अनुभवों' की संकल्पना किस रूप में महत्त्वपूर्ण है?

प्राथमिक अनुभव ऐसे अनुभव हैं जो व्यक्ति की इन्द्रियों के प्रत्यक्षत: जगत के संपर्क में आने से होते हैं। द्वितीयक अनुभव वे जो सुनकर, पढ़कर आदि तरीकों से होते हैं। घटनाओं को अनुभवों में ढाल सकने का सबसे सहज अभ्यास उन्हीं घटनाओं के जरिए हो सकता है जिनमें बच्चा स्वयं भागीदार या दृष्टा की भूमिका में होता है। घटनाओं को अनुभवों में ढ़ालने की प्रक्रिया की वैचारिकी को समझने के सरल अवसर भी प्राथमिक अनुभवों द्वारा ही उपलब्ध हो सकते हैं। स्वयं की अनुभूतियों को भाषा में व्यवस्थित करने का अनुभव बच्चे में ऐसी क्षमताएँ विकसित कर सकता है जिसकी मदद से वह द्वितीयक अनुभवों को समझ सके। भाषा-शिक्षण में समझने को बार-बार चुनौती के रूप में देखा जाता है। यदि पाठ्यक्रम में प्राथमिक अनुभवों तथा भाषा में जीवंत संबंध बनाने की प्रक्रिया को शिक्षणशास्त्रीय सम्मान दिया जाता है तो यह पढ़कर या सुनकर समझने में पेश आने वाली समस्या का दूरगामी हल प्रस्तुत करने में सक्षम है। बातचीत तथा संवाद करने को सभी प्राथमिक कक्षाओं में प्रमुख स्थान दिया जाना अनिवार्य है। भाषा की जड़े प्राथमिक अनुभवों के आधार में ही समाई होती हैं।

पियाजे ने दो साल तक की अवस्था को इन्द्रिय गत्यात्मक अवस्था (the sensori motor stage) का नाम दिया है। उनका मतलब है कि इस उम्र में शिशु कार्यकलापों तथा प्रत्यक्षीकरण या इंद्रिय संवेदनों का वातावरण को समझने के लिए उपयोग करते हैं। ब्रिटन का विश्वास है कि जिस किसी ने बच्चों के साथ समय बिताया होगा, उसे इस बात को स्वीकारने में कोई दिक्कत नहीं होगी कि उनके लिए काम तथा प्रत्यक्षीकरण परस्पर गुंथे होते हैं।

ब्रुनर ने इन्द्रिय गत्यात्मक अवस्था को दो भागों में बाँटा है। पहला कर्म सहित प्रत्यक्षीकरण जिसे उन्होने 'दि एन एक्टिव सिस्टम' (दृश्यात्मक व्यवस्था) का नाम दिया है। दूसरा क्रिया रहित प्रत्यक्षीकरण जिसे वे 'आइकोनिक सिस्टम' (चित्रात्मक व्यवस्था) का नाम देते हैं। एन एक्टिव सिस्टम में काम के बिना इंद्रिय संवेदन नहीं होता इसलिए संसार के निरूपण में इस सिस्टम की सीमाएँ अधिक हैं। जिस-जिस काम को किया जाएगा उसी-उसी के बारे में निरूपण तैयार किया जा सकता है। 'आइकोनिक सिस्टम' में सीधे तौर पर क्रिया करने की बंदिशों से कुछ मुक्ति मिलती है इसलिए यह निरूपण जैसे वैकल्पिक रास्तों का जरिया बनता है।

ब्रुनर ने तीसरे सिस्टम को 'सिम्बोलिक सिस्टम' (प्रतीकात्मक व्यवस्था) का नाम दिया है। यह पहले दो प्रकार की व्यवस्थाओं का विस्तार है। जब कोई बच्ची शब्दों का उपयोग वस्तुओं या लोगों या घटनाओं के लिए लेबल के रूप में करने लगती है तब समझना चाहिए कि उसने कोटियाँ गढ़ने का औजार अर्जित कर लिया है। इस औजार की सहायता से वह दुनिया के प्रति अपनी समझ (world view) को ठीक से निरूपित कर सकता है।

ब्रिटन का कहना है कि यदि वह इस सवाल पर विचार करना चाहे कि आज शाम को वह क्या सुनना पसंद करेगा और इसके जवाब में अपनी उम्मीदों को व्यक्त करने के लिए उसके पास पसंद और नापसंद दो ही श्रेणियाँ हैं तो इससे वह शाम के बारे में ठीक से पूर्वानुमान नहीं लगा सकता। वह अपनी उम्मीदों को समझ सकता है तथा उनके बारे में अधिक सटीक पूर्वानुमान लगा सकता है। यदि उसके पास विभिन्न वाद्य-यंत्रों की श्रेणियाँ उपलब्ध हैं और इन श्रेणियों की भी उप-श्रेणियाँ उपलब्ध हैं तभी शाम के बारे में अपनी उम्मीदों को आकार देने में वह अधिक आत्मविश्वास के साथ काम कर सकेगा (वही:190)। इस बात को समझने के लिए नीचे दिए गए अनुभव पर विचार कीजिए–

मेरी एक भानजी (ज्योति) करनाल में रहती है। जून के महीने में उसके पिता ने फोन करके बताया कि वह हमारे पास दिल्ली आना चाहती है। समय की किल्लत के कारण मैं करनाल जाने में असमर्थ था लेकिन ज्योति की इच्छा का सम्मान भी रखना चाहता था। इसलिए मैंने वैकल्पिक रास्तों की खोज शुरू की। जितने विकल्प सोचे जा सके उनमें से एक विकल्प खर्च तथा समय दोनों के लिहाज से कम खर्चीला था। विकल्प इस प्रकार था कि ज्योति के पिता जिस संस्था में काम करते हैं उस संस्था की गड़ियाँ विभिन्न प्रयोजनों हेतु दिल्ली आती रहती हैं। मैंने इसी सूत्र में संभावनाएँ देखीं और ज्योति के पिता को फोन कर पूछने के बारे में सोचा कि संस्था की गाड़ी से ज्योति के दिल्ली आने की संभावना है। सोचने की प्रक्रिया में एक सवाल उभरा कि किस जगह को मिलने हेतु चुना जाए? जब मानसिक तौर पर मैंने स्वयं को उस जगह पर इंतजार में खड़ा किया तो गाड़ी की पहचान के संदर्भ में कई दिक्कतें साफ-साफ प्रत्यक्ष हो गई। तब मैंने सायास तौर पर कोटियों के उपयोग पर विचार किया। मैंने सोचा कि यदि मेरे पास गाड़ी की विशिष्ट पहचान के संदर्भ में एक भी कोटि नहीं है तो ज्योति तथा मेरे मिल पाने की उम्मीद आधी-आधी है। मैं इस बात को लेकर आश्वस्त नहीं था कि हम मिल सकेंगे। मैंने एक कोटि गाड़ी का मॉडल जैसे अंबेस्डर, मारुति-800 आदि का चुनाव किया और मानसिक तौर पर उसी जगह पहुँचा तो मैंने महसूस किया कि पहले की तुलना में भविष्य को लेकर मेरा विश्वास अधिक सकारात्मक था। इस तरह मैंने एक अन्य कोटि-गाड़ी का रंग-का चुनाव किया और फिर गाड़ी नं. की कोटि का उपयोग किया। मैंने अनुभव किया कि इन तीन कोटियों को अपने पास पाकर मैं भविष्य के उन क्षणों के बारे में विश्वस्त था और भानजी से मिलने की सकारात्मक कल्पना कर सकता था। भाषा के माध्यम से उपलब्ध इन कोटियों ने भानजी से मिलने से संबंधित संसार के बारे में मेरी अपेक्षाओं को सटीक किया।'

जानवर जन्मजात प्रवृति (basic instinct) से भूख के प्रति व्यवहार करते पाए जाते हैं लेकिन वे विभिन्न कोटियों के बीच अर्न्तसंबंध नहीं देख पाते। ब्रिटन का जोर इस बात पर है कि अनुभव के किसी पक्ष को शब्दों के उपयोग से कोटियों में ढालने का लाभ तभी है जब हम कोटियों में अंतर्संबंध स्थापित करें। भूख की श्रेणी, स्वाद की श्रेणी, जीवित रहने की श्रेणी, न्याय, समानता, पोषण, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक व्यवस्था आदि श्रेणियों में अंतर्संबंध देख पाने से ही इन श्रेणियों से जुड़े विचार, भाषा और

व्यवहार में तारतम्यता बैठ सकती है। श्रेणियों के मध्य संबंध निम्न प्रकार के हो सकते हैं:

पदक्रम: कोटियों के मध्य पदक्रम का संबंध हो सकता है। कोटियों की जटिलताओं के आधार पर अनेक श्रेणियाँ तथा उप-श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं। जैसे 'फूल' की उप-श्रेणी 'गुलाब का फूल', गुलाब के फूल की उप-श्रेणी 'लाल गुलाब का फूल' हो सकती है। विपरीतार्थकता, पर्यायवाचिता, क्रमबद्धता (किसके बाद कौन) अन्य प्रकार के संबंध हैं।

वाक्य विन्यास: वाक्य की संरचना में शब्दों को कौन-सा स्थान मिला हुआ है और वे शब्द अर्थ की दृष्टि से किस प्रकार संबंधित होते हैं।

सामान्य वाक्य विन्यास संबंध: इस संबंध को समझने के लिए ब्रिटन ने भाषाविद् नोम चोमस्की के काम से प्रेरित ब्रुनर की मदद ली है। उनका मानना है कि प्रत्येक भाषा अपने व्याकरण में तीन बुनियादी गुणों को आत्मसात करती है और ये गुण परिपक्व चिंतन के साथ गहराई से जुड़े हैं। ये गुण हैं–

(i) **कर्ता-विधेय** (predicate): संबंध-कर्ता द्वारा जो कुछ किया जाता है उसे विधेय कहते हैं। कर्ता तथा विधेय वाक्य में खास तरह से संबंधित रहते हैं। यह संबंध वाक्य के बदलने पर भी स्थिर रहता है। विधेय, अनुभवों के पक्षों को सूत्रबद्ध करने का नाम है। विधेय पर तभी विश्वास किया जाता है जब उसका संबंध किसी कर्ता के साथ जोड़ दिया जाए।

(ii) **क्रिया-क्रम संबंध:** यह कार्य तथा कारण के तार्किक संबंध को दर्शाता है।

(iii) **मोडिफिकेशन:** इसको तर्कशास्त्रियों ने 'वर्गों की उभयनिष्ठता' का नाम दिया है। जैसे 'एक हरी टोपी', में 'हरा' 'टोपी', मोडिफायर है तथा 'एक हरी टोपी', 'हरी वस्तुओं' तथा 'टोपियों' की उभयनिष्ठता को दर्शाता है।

समझ का विकास

भाषा के विकास के सैद्धान्तिक आधारों पर विस्तार से चर्चा करने के बाद आइए उस प्रक्रिया को व्यवस्थित किया जाए जिससे होकर बच्चे तथा बच्चियों के सोचने की शक्ति का विकास होता है। भाषाई विकास की प्रक्रिया में बच्चे तथा बच्चियाँ दृश्यात्मक व्यवस्था से चित्रात्मक व्यवस्था की ओर विकास करते/करती हैं। धीरे-धीरे वे प्रत्यक्ष गतिविधियों से आगे बढ़कर मस्तिष्क पर अंकित अनुभव चित्रों के लिए भी भाषा का

उपयोग करने लगते/लगती हैं। इसका सरलीकृत क्रम इस प्रकार है–

(i) वह एक ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जिसमें संगठित करने की क्षमता होती है जो वह चिंतन में प्राप्त नहीं कर सकता।

(ii) वह भाषा में जो कुछ व्यवस्थित करता है उसे चिंतन में भी व्यवस्थित करने में सक्षम हो जाता है।

(iii) वह पहले तो जटिल अनुभवों को शब्द का आकार देकर फिर इन अभिव्यक्तियों पर विचार करके अपनी सांगठनिक क्षमता के क्षेत्र का विस्तार करता है।

(iv) उसकी चिंतन को संगठित करने की क्षमता उसकी भाषा को संगठित करने की क्षमता से कहीं आगे निकल जाती है। (ब्रिटन: 201)।

इस चार स्तरों के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा बोलने से शुरू होती है और बोलने की शक्ति को अधिक स्पष्ट करने की दिशा में बढ़ती है। इस दिशा में किया जाने वाला विकास इस बात पर निर्भर करता है कि चिंतन के पक्ष को किस गंभीरता से शामिल किया गया है। इन स्तरों से इस बात का पुन: पता मिलता है कि भाषा के विकास में मानसिक प्रक्रियाओं का योगदान सबसे अधिक होता है। इसी के दम पर तत्काल होने वाले वैयक्तिक अनुभवों के परे जाकर एक व्यापक सामान्य समझ में हिस्सेदारी की जा सकती है। वैयक्तिक अनुभव से व्यापक समझ तक की यात्रा मानसिक है। मानसिक प्रक्रियाओं की वजह से ही एक ऐसा व्यक्ति जिसने कभी भी एक से अधिक हाथी न देखें हों बिना झिझक के हाथियों की कतारों, झुड़ों आदि की बात कर सकता है। भाषा में अनुभव को सैद्धांतिक रूप से भिन्न किए जा सकने वाले तत्वों (Theoritically disociable elements) में विष्लेषित करने की शक्ति होती है। इसी वजह से इंसान वैयक्तिक अनुभवों को अन्य के अनुभवों के साथ साझा तथा संगठित कर पाता है। इसलिए बच्चों को भाषाई विकास में सहायता देने का सार्थक अर्थ उसके हाथ में उपयुक्त औजार थमाना है और वह औजार है अनुभव को भाषा में कोड करना। यह कोडिकरण ही उसके ऐतिहासिक संचय का हिस्सा बनता है। मनुष्य द्वारा प्रतीकों को इस्तेमाल कर सकने की जन्मजात योग्यता सबसे पहले उसे भाषा सीखने तथा बाद में संकल्पनाएँ बना सकने की शक्तियाँ प्राप्त करने के काबिल बनाती हैं जोकि बोलने की शक्तियों से बहुत आगे हैं।

भाषा और विचार व्यवहार के दो रूप हैं। दोनों ताकतवर तरीके से अन्त:क्रिया करते हैं। दोनों भिन्न तथा विकास के रूपों में अलग हैं। वाइगोस्की ने दो प्रतिछेदी वृतों का उभयनिष्ठ क्षेत्र 'वाचित विचार' (verbal thought) को प्रदर्षित करता है तथा क्षेत्र 'वाचना रहित विचार' (nonverbal thought) एवं 'बुद्धिमानी रहित वाणी' (non-intellectual speech) को दर्षाते हैं। इस विचार का रेखाचित्र निम्न प्रकार का हो सकता है:

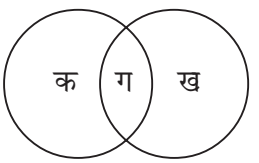

क- वाचना रहित विचार
ख- विचार रहित वाणी
ग- वाचिक विचार

विचार रहित वाणी को धारण करना अधिक आसान है। हमारे रोजमर्रा की जिंदगी में हम बहुत कुछ ऐसा करते हैं जिसमें कोई विचार पैदा नहीं होता। भाषा के विकास तथा अनुभवों द्वारा सीखने की प्रक्रिया में 'व्यक्ति' का निर्माण होना सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। व्यक्ति के निर्माण के लिए पूर्व-शर्त संकल्पनाएँ बनाने की भाषा का उपयोग करना है। लेंगर का विचार है कि मानव मस्तिष्क की कार्यप्रणाली में वैयक्तिकता अधिकतम देखी जाती है। मनुष्य अपनी मानसिक शक्तियों की वजह से अन्य जीवों की तुलना में अधिक वैयक्तिक हो सकता है (वही: 222)। व्यक्ति के निर्माण में प्राथमिक तथा द्वितीयक अनुभव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पुस्तकें, दृश्य-श्रव्य साधन, द्वितीयक अनुभवों के स्रोत हैं। ब्रिटन का मानना है कि द्वितीयक अनुभव-पढ़ने तथा देखने के जरिए-किशोरों को वैयक्तिकता का महत्त्वपूर्ण साधन उपलब्ध करवाते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति में पुस्तकें अन्य साधनों की तुलना में अधिक लाभकारी हैं क्योंकि ये लोगों की पहुँच में आसानी से आ सकती हैं। ब्रिटन का मानना है कि कोई अधिक वैयक्तिक बन सकता है, यदि वह अपनी वैयक्तिक रुचियों को पूरा कर सके।

भाषा के शिक्षण तथा अधिगम से संबद्ध अनेक समस्याओं को विभिन्न शोध गतिविधियों तथा पुस्तकों में उठाया जाता रहा है जिनमें से कुछ पूर्णत: सैद्धांतिक तथा अन्य भाषा के चार मान्य कौशलों से संबंधित हैं। भाषा के कौशलों– सुनना, बोलना, पढ़ना तथा लिखना का उपयोग करने तथा इनका उपयोग सिखाने के संदर्भ में अनेक समस्याओं की कल्पना की जा सकती है। इस लेख में भाषा के संदर्भ में अवबोधन से संबंद्ध समस्या पर विचार किया जा रहा है। अवबोधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके

माध्यम से स्त्री और पुरुष मौखिक अथवा लिखित भाषा को समझते/समझती हैं। अवबोधन को अन्य की तुलना में अधिक विचारणीय सरोकार समझने के पीछे लेखक की कुछ मान्यताएँ इस प्रकार हैं:

पहली:	भाषा एक वैचारिक प्रक्रिया है। इन्द्रिय संवेदनों को अनुभव में ढालने के लिए संवेदनों का प्रतीकों में कोडीकरण करना भाषा निर्माण तथा उसका उपयोग कर सकने के लिए पहला तथा अनिवार्य वैचारिक कदम है। इस प्रक्रिया में प्रतीकों को गढ़ना, समझना तथा उनकी कोटियाँ बनाना इस वैचारिक प्रक्रिया की उप-प्रक्रियाएं हैं।
दूसरी:	अवबोधन, भाषा के कौशलों की तुलना में अधिक समय तथा सरोकार की माँग करता है। सामान्यत: बच्चा दो साल की स्कूली शिक्षा में सुनने, बोलने तथा पढ़ने के कौशल को हासिल कर लेता है। लिखने के कौशल में महारत हासिल करने के लिए उसे कुछ वक्त और चाहिए होता है। लेकिन अवबोधन इनसे अधिक सूक्ष्म प्रक्रिया तथा योग्यता है जो लगातार बेहतर विकास की दिशा में बढ़ती रहती है।
तीसरी:	मानव जीवन का अधिक समय देखी, सुनी तथा पढ़ी गई बातों का अर्थ निकालने में जाता है।
चौथी:	संज्ञात्मक विकास के क्रम में बोलने, सुनने, पढ़ने तथा लिखने की कुशलताओं में अवबोधन की योग्यता में निखार के साथ सुधार तथा तीव्रता की संभावना बढ़ जाती है।
पाँचवी:	अवबोधन, योग्यता का विस्तार भाषा की कक्षा, अन्य विषयों की कक्षाओं तथा जीवन के अन्य पहलुओं में होता है तथा ये परिस्थितियाँ परस्पर पूरक हैं।

अवबोधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से स्त्री और पुरुष मौखिक अथवा लिखित भाषा को समझते/समझती हैं। मौखिक भाषा को समझने के लिए अनिवार्य तत्वों का सबसे सरलीकृत रूप यह है कि श्रोता को वक्ता द्वारा प्रयोग में लाई जा रही भाषा में प्रयुक्त ध्वनि-संकेतों की पहचान हो। ध्वनि-संकेतों की पहचान के बाद उनसे अर्थ निकालने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। लिखित भाषा को समझने के लिए पाठक को

लिखने वाले द्वारा प्रयोग में लाई जा रही भाषा में प्रयुक्त लिखित संकेतों की पहचान हो। लिखित-संकेतों की पहचान के बाद उनसे अर्थ निकालने की प्रक्रिया आरंभ होती है। लिखित या ध्वनि संकेतों की पहचान अर्थ ग्रहण करने की एक पूर्व शर्त हो सकती है लेकिन अनिवार्य नहीं। अर्थ ग्रहण उसी हालत में हो सकता है जब संकेतों में दर्ज प्रतीकों को डिकोड करने की योग्यता हासिल कर ली जाए। मौखिक या लिखित प्रतीकों से अर्थ निकालने की योग्यता को विकसित करने का एक रास्ता बच्चों और बच्चियों के प्राथमिक अनुभवों से होकर गुजरते/गुजरती हैं। बच्चा/बच्ची जिन घटनाओं का संवेदन अपनी इंद्रियों से पाता है उनमें से जितने अधिक संवेदनों पर वह विचार कर सकता/सकती है उतनी अधिक घटनाओं को वह अनुभव के रूप में रूपाँतरित कर सकता/सकती है। स्वयं द्वारा ग्रहण संवेदनों के प्रतीकात्मक निरूपण तैयार करने से अनुभवों का जन्म होता है। प्रतीकात्मक निरूपण पहले से उपलब्ध रह सकते हैं तथा जरूरत के मुताबिक निर्मित भी किए जा सकते हैं। प्रतीकात्मक निरूपण बच्चे द्वारा अनुभूत वास्तविकता का चित्रण होता है। उसके द्वारा तैयार निरूपण जितना स्पष्ट होगा, वास्तविकता के साथ उसकी दूरी उतनी ही कम होगी। इस प्रकार प्राथमिक अनुभव बच्चों और बच्चियों की इस बात में मदद करते हैं कि वे अपने जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं का निरूपण तैयार कर सकें। उसके द्वारा तैयार किया गया निरूपण उसके तथा अन्य लोगों, वस्तुओं और परिस्थितियों के प्रति उसके व्यवहार को आकार देता है। उदाहरण के लिए तीन साल का बच्चा किसी वयस्क को देखकर उस वयस्क के डरावना होने की छवि अपने मस्तिष्क में बना लेता है। अब उस वयस्क के साथ उसके व्यवहार का स्वरूप उस वयस्क के बारे में उसके द्वारा तैयार किए गए निरूपण पर निर्भर करेगा। उसे इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि वास्तव में उस व्यक्ति का व्यवहार डरावना नहीं है। उसके द्वारा तैयार निरुपण को अभिव्यक्ति के अवसर देने से वह निरूपण को व्यक्त करने के लिए उपलब्ध शब्दों, वाक्यों तथा भाषिक संरचना में से चुनाव करेगा। अभिव्यक्ति के अवसरों में मात्रात्मक तथा गुणात्मक वृद्धि भाषा का चुनाव तथा इस्तेमाल करने की दक्षता को बढ़ा देती है। उस वयस्क के साथ होने वाले अन्य अनुभवों से उसके द्वारा तैयार निरूपण में परिवर्तन हो सकता है। उस परिवर्तित निरूपण को व्यक्त करने के लिए वह भाषा के चुनाव तथा प्रयोग को बदलेगा। इस तरह के अनेक निरूपणों को सुधारने के क्रम में घटनाओं को समझकर उनका निरूपण तैयार करने की योग्यता में गंभीरता आती है तथा उसका विस्तार होता है।

भाषा सिखाने की प्रक्रिया में एक निर्देशक सिद्धान्त यह हो सकता है कि हर बच्चे और बच्चियों में भाषा सीखने, उसका उपयोग एवं सृजन करने की जन्मजात योग्यता होती है। भाषा के स्कूली पाठ्यक्रम में इस सिद्धांत को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर शैक्षिक गतिविधियों का सृजन किया जाना चाहिए। इस प्रकार की गतिविधियों के कुछ उदाहरण कृष्ण कुमार (2000) द्वारा लिखी गई पुस्तक-'बच्चे की भाषा और अध्यापक-एक निर्देशिका' में मिलते हैं। विशेषकर प्राथमिक कक्षाओं में प्रथम भाषा-शिक्षण के लिए शैक्षिक गतिविधियाँ उन कामों तथा घटनाओं पर आधारित होनी चाहिए जिनसे बच्चे और बच्चियाँ प्राथमिक तौर पर जुड़े रहते/रहती हैं। गतिविधियों का सृजन, चुनाव तथा उपयोग करते समय बच्चे और बच्चियों को विचार करने तथा अभिव्यक्ति का भरपूर अवसर मिलना चाहिए। भाषाई विकास में मानसिक प्रक्रियाओं का योगदान सर्वाधिक होता है। इस बात को बिसराए बिना गतिविधियों का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिनमें बच्चों और बच्चियों को मानसिक संघर्षों से गुजरना पड़े। संघर्ष घटना तथा शब्दों के चुनाव का हो सकता है, घटनाओं को समझने के लिए दृष्टिकोण के चयन का हो सकता है, घटना को बयान करने के लिए उपयुक्त शब्दों, शब्दावलियों, मुहावरों, लोकोक्तियों तथा वाक्य संरचना के चुनाव का हो सकता है। संघर्ष इस बात के लिए भी हो सकता है कि उसके पास उपलब्ध या उसके द्वारा तैयार किए गए निरूपणों में से किस को वर्तमान समूह या व्यक्ति के सामने व्यक्त किया जाए। इस प्रकार के संघर्षों का सीधा संबंध भाषा के विकास के साथ है। संघर्ष की यह प्रक्रिया प्राथमिक अनुभवों में रूपाँतरित करने हेतु अनिवार्य है। अनुभवों के वैचारिक गठन की तुलना में लिखने तथा पढ़ने का कौशल कम जटिल तथा समय की दृष्टि से कम खर्चीला लेकिन अधिक महत्त्वपूर्ण है। एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करें जो किसी भाषा की वर्णमाला लिख तथा पढ़ सकता है। वह उस भाषा में शब्दों तथा वाक्यों को लिख तथा पढ़ सकता है। एक अन्य व्यक्ति इन सभी बातों में समान है लेकिन उसके पास अनुभवों को संगठित कर सकने का अतिरिक्त गुण है। यह दूसरा व्यक्ति प्राथमिक अनुभवों के वाचिक निरूपण तैयार करने में सक्षम है। दोनों में से कौन-सा व्यक्ति भाषा के अर्जित कौशलों का उपयोग अपने पक्ष में अधिक कर सकता है? निश्चित रूप से दूसरा व्यक्ति भाषाई दृष्टि से अधिक मजबूत है तथा उसकी भाषाई समृद्धि की संभावनाएँ भी अधिक हैं। क्योंकि भाषा का उपयोग मौखिक या वाचिक अभिव्यक्ति करने या अभिव्यक्ति को समझने के लिए तभी किया जा सकता है जब संदर्भ विषेष से संबंधित वाचिक निरूपण उपलब्ध हों। इसलिए भाषा के

अवबोधन का प्राथमिक अनुभवों के साथ गहरा संबंध है। भाषा-शिक्षण के प्रचलित तरीकों में सीखने की शुरुआत बच्चे के प्राथमिक अनुभवों को पूरी तरह से नकारकर होती है। होना यह चाहिए कि स्कूली दुनिया में बच्चे और बच्चियों के प्राथमिक अनुभवों को विस्तार मिले। प्राथमिक अनुभवों को शिक्षा की अड़चन की तरह न देखकर शिक्षणशास्त्रीय स्रोत के रूप में देखना चाहिए। प्राथमिक अनुभव भाषाई विकास की दृष्टि से भाषा को संवारने के सहज में उपलब्ध स्रोत हैं। इनका तिरस्कार करके भाषा-शिक्षण के किसी भी कार्यक्रम की सफलता पर संदेह किया जा सकता है। ब्रिटन का विचार है कि प्राथमिक अनुभवों को नजरअंदाज करने का साहस हम नहीं कर सकते। यदि ऐसा हो रहा है तो यह दु:साहस ही कहलाएगा। प्राथमिक अनुभवों की कोटियाँ बनाने, कोटियों को व्यवस्थित करने, कोटियों में अन्त:क्रिया करवाने तथा कोटियों का पुनर्निर्माण करने की प्रक्रिया को गंभीरता से लिए जाने से द्वितीयक अनुभवों यानि दूसरों द्वारा किए गए अनुभवों, को सुनना, समझना, उन पर प्रतिक्रिया देना तथा व्यवहार को दूसरों के अनुभवों के अनुसार आकार देना एक अनिवार्य काम है। तमाम पुस्तकें द्वितीयक अनुभवों की स्रोत हैं। विभिन्न प्रकार की दृश्य-श्रव्य सामग्री इसी के अन्तर्गत आती हैं। द्वितीयक अनुभव, प्राथमिक अनुभवों को आकार तथा विस्तार देते हैं। प्राथमिक अनुभवों के आधार पर ही द्वितीयक अनुभवों की व्याख्या तैयार की जाती है। द्वितीयक अनुभवों को समझ पाना तभी संभव है जबकि संबद्ध प्राथमिक अनुभवों को समझा गया हो। दुनिया को समझने के लिए तैयार कोटियाँ प्राथमिक अनुभवों की देन होती हैं। इन्हीं कोटियों के आलोक में अन्य लोगों द्वारा तैयार कोटियों को समझा जाता है। प्राथमिक अनुभवों में व्यक्ति का इतिहास सामाजिक-राजनैतिक संदर्भ, सामाजिक चलन, संस्कृति, उसकी रुचियाँ तथा भविष्य संबंधी अपेक्षाएँ दर्ज होती हैं। किसी नई परिस्थिति या द्वितीयक अनुभवों का सामना होने पर ये तमाम बातें संगठित रूप से प्रभाव डालती हैं।

अवबोधन के सार्थक विकास के लिए प्राथमिक अनुभवों के सृजन पर जोर देने की आवश्यकता है। इन्हीं के आधार पर सुनकर या पढ़कर या देखकर या तमाम इंद्रिय संवेदनों की सम्मिलित छवि से अर्थ निकाला जा सकता है। अवबोधन एक शैक्षिक चुनौती मात्र नहीं है बल्कि वह जीवन को समझने तथा उसमें हस्तक्षेप करने की चुनौती भी है। आठ साल की एक लड़की की कमर पर उसके चाचा ने खेल के दौरान थप्पड़ मार दिया। लड़की के कमर पर फोड़ा हो रखा था जिसका उसके चाचा को पता नहीं था।

थप्पड़ लगते ही वह चिल्लाकर रोने लगी। उसका चाचा यह कहकर कि-'ये तो खेल-खेल में रोने लगती है' उसे चिढ़ाने लगा। लड़की के पिता ने उसे प्यार किया और अपने भाई को बताया कि लड़की की कमर में फोड़ा हो रखा है। चाचा ने कहा कि लड़की ने उसे बताया क्यों नहीं था? कुछ देर बाद उसके पिता ने देखा कि लड़की एक कोने में बैठी रो रही है। उन्होंने लड़की से प्यार से पूछा कि वह अब क्यों रो रही है? लड़की ने सिसकते हुए प्रतिप्रश्न किया कि-'पापा एक बात बताओ जहाँ फोड़ा नहीं हो रखा तो क्या ये (चाचा) वहाँ-वहाँ थप्पड़ मार देगा? मेरी आँख पर फोड़ा नहीं हो रखा तो क्या ये आँख पर मार देगा?'' उन्होंने कहा सवाल तो तुम्हारा ठीक है कि कोई भी किसी को क्यों मार देगा। पिता ने लड़की से कहा 'तुम यह बात जाकर अपने चाचा को समझाओ।' वह गई और चाचा के सामने अपना विरोध दर्ज करवाया। वापस लौटकर आने पर उसने अपने पिता से कहा– 'पापा अगर किसी के पैर में दर्द है और वह धीरे-धीरे सड़क पार कर रहा है तो क्या उसे लाउडस्पीकर लगाकर सब बस और गाड़ी वालों को बताना चाहिए कि धीरे चलो क्योंकि उसके पैर में दर्द है? अगर बस वालों (ड्राइवर) को नहीं पता कि उसके पैर में दर्द है तो क्या वे उस पर चढ़ा देंगे? 'पिता ने कहा-''नहीं उनको ऐसा नहीं करना चाहिए और न ही कानूनन वे ऐसा कर सकते हैं।' इस पर लड़की बोली- ''फिर चाचू क्यों कह रहा है कि उसे पता नहीं था कि मेरे फोड़ा हो रखा है?''

इस घटना में लड़की ने न्याय तथा उपयुक्त सामाजिक व्यवहार के मानदंडों का उपयोग करते हुए अपनी कमर पर लगी चोट को अर्थ ही नहीं दिया बल्कि इस चोट की पीड़ा का विस्तार उसने अन्य लोगों के दर्द को महसूस करने में किया। अपने द्वारा अनुभव प्राथमिक अनुभव के आधार पर अन्य के संभावित प्राथमिक अनुभवों (जो उसके लिए द्वितीयक अनुभव हैं) को भी वह समझ सकी। लिखने का कौशल हासिल कर लेने पर इस बात को लिख सकती है। लेकिन लेखन-कौशल हासिल होने पर भी आवश्यक नहीं है कि वह अवबोधन की योग्यता का प्रदर्शन करे। यह बात समान्यीकरण के स्तर तक स्वीकृत की जा चुकी है कि अक्षर ज्ञान होना समझ के विकास की गारंटी नहीं है (यशपाल समिति. 1993)। समझ का विकास एक आंतरिक प्रक्रिया है। कुशलताओं तथा समझ का विकास दो भिन्न प्रक्रियाओं के परिणाम हैं। दोनों प्रक्रियाएँ परस्पर स्वतंत्र हैं। स्वतंत्र इस अर्थ में कि एक की दूसरे पर निर्भरता अनिवार्य नहीं है तथा पूरक इस रूप में कि अच्छी समझ लेखन की विधा को तथा लेखन की विधा दो

तरह से समझ को बढ़ाती है। पहला द्वितीयक अनुभवों के रूप में उपलब्ध रहकर तथा दूसरा लिखने के दौरान अपने विचारों की समीक्षा करने में मदद करके स्वयं लिखने वाले/वाली की समझ में परिवर्तन लाकर।

अब तक हमारी इस बात पर सहमति बन गई है कि अवबोधन के लिए प्राथमिक अनुभवों का महत्त्व सर्वाधिक है। प्राथमिक अनुभवों का संचय, उपयोग, सुधार तथा विस्तार एक महत्त्वपूर्ण काम के रूप में सामने आता है। ब्रिटन की सलाह है कि बातचीत की प्रक्रिया से बच्चे अपनी बात को बेहतर ढंग से व्यक्त करना सीखते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में भाषाई विकास के लिए बच्चों के अनुभवों को केंद्र में रखना अनिवार्य हो जाता है। उनके अनुभवों का तिरस्कार करके भाषाई कुशलताओं का अभ्यास तो कराया जा सकता है लेकिन जिंदगी को स्कूल से तथा स्कूल को जिंदगी से जोड़कर समझ को व्यापक आधार नहीं दिया जा सकता।

अवबोधन के लिए यह आवश्यक है कि बोलने या लिखने वाला व्यक्ति सुनने या पढ़ने वाले व्यक्ति के संदर्भ को ध्यान में रखे। एक वक्ता तथा श्रोता के बीच कुछ सूचनाएँ ऐसी हो सकती हैं जिन्हें दोनों जानते हों लेकिन कुछ सूचनाएँ ऐसी हो सकती हैं जिन्हें केवल वक्ता जानता हो। इस बात को रेखाचित्र द्वारा इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

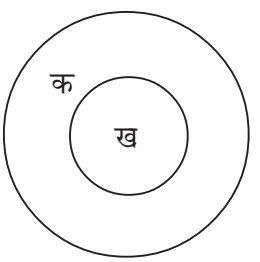

इस रेखाचित्र में 'क' कही गई पूरी बातों को दर्शाता है तथा 'ख' इन बातों में से उनको दर्शाता है जो दानों (वक्ता एवं श्रोता) पहले से जान रहे हों। सही संप्रेषण के लिए श्रोता या पाठक के संदर्भ को ध्यान रखना आवश्यक है। श्रोता के पास मौजूद ज्ञान से जोड़े बिना अवबोधन असंभव नहीं पर मुश्किल जरूर है। ग्राइस का विचार है कि अवबोधन की प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए सहकारिता के सिद्धांत का पालन करना चाहिए। उनके अनुसार इस सिद्धांत में से वार्ता के चार नियम (conversational maxims) निकलते हैं। पहला मात्रा का नियम (maxim of quantity) आवश्यकता से अधिक न

कहा जाये, दूसरा गुणवत्ता का नियम (maxim of quality)–सही बात कही जाए, तीसरा संगति का नियम (maxim of relation)–जो बात संदर्भ के लिए संगत हो वही कही जाए, तथा चौथा तरीके का नियम (maxim of manner)–स्पष्ट कहा जाए (बेनजाफील्ड. 1992)। अवबोधन की प्रक्रिया संदर्भगतिता के नियम को मानकर चलती है।

स्कूली पाठयचर्या में अवबोधन की क्षमता का विकास करने में प्रश्न दो रूपों में महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। पहला यह कि प्रश्न विषय की प्रकृति के अनुरूप सीखने वाले की मदद करने के शैक्षणिक उपकरण होते हैं, तथा दूसरा यह कि प्रश्न ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करने का एक अच्छा बहाना है। प्रश्नों की प्रवृति इस प्रकार की हो जिसमें सामान्य रूप में विषय की यथा विशिष्ट रूप से पाठ की रचना को जीवंत करने में मदद मिले। प्रश्नों के पूछे जाने को गतिशील कक्षा तथा लोकतांत्रिक समाज के निर्माण के लिए शिक्षणशास्त्रीय साधन के रूप में सम्मान दिया जाना जरूरी है। प्रश्नों का स्वरूप सोचने–समझने की सीमाओं को सिकोड़ या फैला सकता है। प्रश्नों का स्वरूप यह तय कर सकता है कि किसी खास साँचे में ढले प्रश्नों का जीवन काल बच्चों में तथा बच्चों के बीच तत्काल समाप्त हो जाएगा या वह लम्बे समय तक कक्षा के भीतर एवं बाहर स्वयं बच्चे में तथा बच्चों के समूह में संवाद के विकसने का जरिया बनेगा। एक ऐसा संवाद जिसमें बच्चे वयस्कों के अलावा भी एक दूसरे को अनुभवी तथा बौद्धिक व्यक्ति के रूप में देखने–समझने के संस्कार का विकास करेंगे। बच्चों, शिक्षकों एवं पाठयपुस्तकों के द्वारा प्रश्नों का पूछा जाना स्वयं में एक संस्कार है। जो व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर एक खास तरह के मूल्य–जाल का विकास करने की सामर्थ्य रखता है। इस मूल्य–जाल का बच्चे के मनो–भौतिक जगत से गहरा रिश्ता बनता है। बच्चे की मौलिकता तथा वैयक्तिकता को अपने तरीके से प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। प्रश्नों की रचना इस प्रकार होनी चाहिए जिसमें मूर्त तथा अमूर्त कोटियों के उपयोग तथा निर्माण की क्षमता का विकास निरंतर होता रहे। प्रश्नों की रचना ऐसी होनी चाहिए जो प्राथमिक अनुभवों के उपयोग करने तथा अधिक अनुभव बटोरने का साहस उत्पन्न करें और द्वितीयक अनुभवों को समझने की दिशा प्रशस्त होती हो।

प्रश्न दो प्रकार से पूछे जा सकते हैं– लिखित तथा मौलिक रूप से। लिखित प्रश्नों की एक विशेषता यह है कि स्थायी होने के कारण इनको बार–बार संदर्भ बिंदु बनाना आसान होता है। लेकिन मौखिक प्रश्नों के जरिए शिक्षक अपने, पुस्तक तथा विद्यार्थी के

साझा ज्ञान को समझकर प्रश्नों की रचना कर सकता/सकती है। ब्रिटन ने गंभीरता से बातचीत को महत्त्व देने का जो सुझाव दिया है, ऐसे परिप्रेक्ष्य में मौखिक प्रश्न या लिखित प्रश्नों पर बातचीत का किया जाना महत्त्वपूर्ण है।

भाषा को विस्तार देने तथा भाषा के माध्यम से विस्तार पाने की प्रक्रिया में भाषा के संदर्भ में इस बुनियादी बात को नहीं भूलना चाहिए कि यह इंसान द्वारा दुनिया के वाचिक निरूपण के रूप में उपलब्ध रहती है तथा संचित-इतिहास के रूप में हमारी अपेक्षाओं तथा सपनों को आकार और दिशा देती है। स्कूली कार्यक्रम को जीवंत बनाने के लिए संचित-इतिहास की अवधारणा काफी मददगर हो सकती है। अवबोधन की क्षमता के विकास का एक महत्त्वपूर्ण पहलू इस अवधारणा के साथ नजदीकी के साथ जुड़ा है।

टिप्पणियाँ

(i) जीरू के अनुसार टेक्नोक्रेटिक मॉडल की एक पहचान यह है कि उसमें जानने का वैयक्तिक पक्ष खो जाता है। उसमें ज्ञान को वस्तुपरक तथ्यों के रूप में पेश किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप ज्ञान को व्यक्ति के बाहर मानकर उसे व्यक्ति पर थोपा जाता है। बाह्य मानने के साथ ही ज्ञान तथा व्यक्ति द्वारा अर्थ देने की प्रक्रिया में तलाक हो जाता है। इसके दो खतरनाक परिणाम निकलते हैं। पहला ज्ञान क्या है तथा ऐसा ही ज्ञान क्यों है? जैसे सवालों के स्थान पर दिए गए ज्ञान को सीखने के बेहतर तरीके क्या होंगे? जैसे तकनीकी सवाल महत्त्व हासिल कर लेते हैं। दूसरा टेक्नोक्रेटिक मॉडल में कोटियों को स्वनिर्मित या प्राकृतिक तथ्य के रूप में प्रचारित किया जाता है। ऐसा दिखाया जाता है जैसे कोटियों के निर्माण में मनुष्य की कोई भूमिका नहीं होती। लेकिन ब्रिटन ने कोटियों का उपयोग इस अर्थ में न कर व्यक्ति द्वारा ज्ञान सर्जन के अनिवार्य पहलू के रूप में किया है। ब्रिटन की इस किताब में साफ है कि कोटियाँ मनुष्य निर्मित होती हैं तथा अलग-अलग संदर्भों में जीने वाले लोग एक-सी दिखने वाली बातों के लिए कोटियों का निर्माण भिन्न प्रकार से करते हैं।

(ii) एक पाद टिप्पणी (वही: 189) में ब्रिटन ने कहा है कि उन्होंने 'निरूपण' तथा 'प्रतीकीकरण' को समान माना है। एक प्रतीक स्वयं के अतिरिक्त अन्य चीज को दर्शाता है। ब्रुनर ने प्रतीक को परिभाषित करते हुए कहा है कि कोई प्रतीक स्वयं प्रतीक के अतिरिक्त किसी अन्य चीज या यादृच्छिक (arbitrary) निरूपण होता है जिसे सादृश्यता (anology) नहीं प्रचलन (convention) द्वारा मान लिया गया हो।

संदर्भ

कुमार, कृष्ण, (2000) *बच्चे की भाषा और अध्यापक-एक निर्देशिका*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली.

केलॉगी, रोनाल्ड टी. (1995) *लैंग्वेज. कॉगनीटिव सायकॉलॉजी* में. सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 231-136.

जीरू,हेनरी ए. *आइडियोलॉजी, कल्चर एंड द प्रोसेस ऑफ स्कूलिंग,* द फॉमर प्रैस, लंदन. 1981 : 10.

जीरू, हेनरी ए. *टूवर्ड ए न्यू सोसीयोलॉजी ऑफ करीक्यूलम. टीचरस एज इंटेलेकुअलस-टूवर्ड ए क्रिटीकल पेडॉगॉगी ऑफ लर्निग* में. बर्जिन एवं गार्वे. लंदन 1088 : 14.

दयाकृष्ण, *ज्ञान मीमांसा.* राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी. जयपुर 1997 : 3.

फ्रॉम, एरिक. *फ्रीडम एंड डेमोक्रेसी.द फीयर* में. रूटलेज. लंदन. 2001 : 297-237.

ब्रिटन, जेम्स (2006). *भाषा और अधिगम.* ग्रंथ शिल्पी. दिल्ली. पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण.

बेंजाफील्ड़, जॉन जी. लैंग्वेज. कॉगनीशन में. प्रिंटिस हॉल.न्यू जर्सी. 1992 : 202-255.

(यशपाल समिति). (1993). शिक्षा बिना बोझ के भारत सरकार. मानव संसाधन विकास मंत्रालय. नई दिल्ली.

चटोपाध्यय देवी प्रसाद (2011). *भाषा साहित्य और संस्कृति* में. राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली : 11-37.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

महात्मा गांधी की नई तालीम का समाजशास्त्र

मनोज कुमार राय*

19वीं सदी के बौद्धिकों द्वारा औपनिवेशिक शिक्षा-प्रणाली का विरोध करना स्वतंत्रता आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। तबके अनेक दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों, कलाकारों, समाज-सुधारकों, लेखकों ने इस विरोध को अपने-2 तरीकों से इसे धार भी दिया था। पर जिस शिद्दत-तर्क-अभिनिवेश प्रक्रिया के साथ उसकी संपूर्णता में गांधी ने इसका विरोध और विकल्प रखा वैसा किसी ने नहीं किया। गांधी की खूबी थी कि वे कोई बात कहते/रखते थे तो सिर्फ गले के जोर से नहीं अपितु तर्क और प्रयोग के आधार पर। सच तो यह है कि जीवन का कोई ऐसा हिस्सा नहीं होगा जिधर गांधी की दृष्टि न गयी हो और उन्होंने उस पर न सिर्फ अपना विचार रखा अपितु अपने प्रयोगशाला में खराद पर कसा भी। लगभग चालीस वर्ष की ईमानदार साधना और प्रयोग के बाद उन्होंने इसे एक मुकम्मल रूप देने का प्रयास किया। इसे ही हम नई तालीम अथवा बुनियादी शिक्षा के नाम से जानते हैं। नई तालीम के माध्यम से गांधी एक ही साथ कई चीज साधना चाहते थे। आजादी की लड़ाई के साथ-साथ स्वदेशी-स्वावलंबन, अहिंसात्मक जीवन-शैली, रचनात्मक-सामंजस्य, देशज-चिंतन, भारतीयता की पहचान और मनुष्यता का संपूर्ण विकास उनका ध्येय था। प्रस्तुत आलेख में हम उनके इसी नजरिये को जानने का प्रयास करेंगे।

अँग्रेजी साम्राज्य से पूर्व भारत में कला-शिल्प और अन्य सेवाओं से जुड़े लोगों की समाज में प्रतिष्ठा थी। समाज इन्हें कलाकार, शिल्पकार और विश्वकर्मा के नाम से पुकारता-जानता था। विभिन्न प्रकार के शिल्पों से पारंपरिक रूप से विभिन्न जातियाँ भी जुड़ी थीं। उन सबके भीतर एक जैविक-तंतु का ताना बाना होता था जो भारतीय गाँव की पारिस्थितिकी को संतुलित किए रहता था और वे परस्पर सहयोग-पूर्वक अपना जीवन यापन करते थे। अंग्रेजों से पहले भी भारत पर आक्रमण हुए थे। पर वे आते थे और लूटपाट कर लौट जाते थे। मुगल-गुलाम वंश आदि शासक यहाँ रूक गए तो वे यहाँ की परंपरा और जीवन-पद्धति के सहयात्री बन गए। पर अंग्रेजों का रवैया कुछ अलग-2 सा

*प्राध्यापक, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

था, 'अंग्रेज जब भारत में आए तो यहाँ की चीजों को ज्यों का त्यों स्वीकार करके आगे बढ़ाने के बजाय उन्होंने उनका मूलोच्छेदन करना शुरू किया। उन्होंने मिट्टी पलटकर जड़ देखना शुरू किया,लेकिन बाद में फिर उस जड़ पर मिट्टी नहीं डाली और नतीजा यह की वह सुंदर वृक्ष नष्ट हो गया।'[1] उन्होंने सर्वप्रथम यहाँ के ताने-बाने को ही कमजोर करने की कोशिश की। इसके लिए उन्होंने शिक्षा व्यवस्था का सहारा लिया और एक नये किस्म का वर्गीकरण किया। शिक्षा मंहगी हुई। अब वह कुछ खास लोगों तक ही सीमित हो गई। इन स्कूलों में न जाने वाला तबका लगातार पिछड़ता चला गया। फलस्वरूप श्रम से जुड़े लोग-जाति हीनतर समझे जाने लगे और बाबूगिरी करने वाले समाज-व्यवस्था की अगली कतार में खड़े हो गए। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी हम किसी व्यक्ति के नाम के आगे 'बाबू' जोड़कर उसे सम्मान देते हैं। जबकि 'बाबू' शब्द का सीधा अर्थ 'क्लर्क' ही होता है और अंग्रेजों ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग भी किया था।

भारतीय आर्ष-चिंतन का सूत्र 'सा विद्या या विमुक्तये' गांधी के शिक्षा दर्शन का केंद्रीय तत्त्व है। उनके अनुसार, 'ज्ञान में वह समस्त प्रशिक्षण समाहित है जो मानव जाति की सेवा के लिए उपयोगी है और विमुक्ति का अर्थ है वर्तमान जीवन की भी सभी प्रकार की पराधीनताओं से मुक्ति।'[2] मुक्ति शब्द का प्रयोग गांधी ने व्यापक अर्थ में किया है। इसकी व्याप्ति वैयक्तिक मुक्ति अर्थात 'अर्थ' से लेकर 'मोक्ष' तक है। 'अर्थ' का सीधा अर्थ है आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक रूप से सशक्त और आत्मनिर्भर होना। 'मोक्ष' के बारे में गांधी का कथन है, 'मेरे लिए अपने देश सेवा और उसके द्वारा समूची मानवता की अथक सेवा ही मोक्ष का मार्ग है।'[3] इतिहास में गांधी पहले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने सेवा को मोक्ष का पर्याय माना है। इतना ही नहीं बुद्ध के 'निर्वाण' को भी वे 'अहंकार-मुक्ति' अर्थात रजवत हो जाना ही मानते हैं।

गांधी दूरदृष्टा थे। तीन-तीन महाद्वीपों की शिक्षा-व्यवस्था को उन्होंने निकट से देखा और समझा था। भारत की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने 'नई-तालीम' की अवधारणा सामने रखा था। गांधी के इस प्रस्ताव का मूल बिंदु था स्कूल-पाठ्यक्रम में उत्पादन-शिल्प को सम्मिलित करना। उनका मानना था कि यह विचार सिर्फ सूचनात्मक अथवा संकेतात्मक न होकर उसका आधार वैज्ञानिक होना चाहिए, 'आज की तरह दस्तकारी की शिक्षा केवल यांत्रिक रूप से न दी जाय, बल्कि वैज्ञानिक विधि से दी जाय अर्थात बच्चे को हर प्रक्रिया के बारे में यह मालूम होना चाहिए कि वह किसलिए की गई।'[4] दरअसल गांधी अपने इस प्रयास से समाज के बिखरे-छिटके धागों को पुनः संजोना चाहते थे। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही एक नई शिक्षा प्रणाली का इस देश में विकसन हुआ जिसमें 'श्रम'को हेय दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति बढ़ी। ऐसा नहीं था कि

यह सब अचानक से हुआ था। इसकी नींव तो बहुत पहले ही पड़ चुकी थी जब इस देश के स्वनामधन्यों ने ऊंच-नीच के तहत 'भारतीयता' के धागे को ऐंठन देने की कोशिश की थी और वे उसमें सफल भी रहे थे। हम सब जानते हैं कि लोक-शिल्प से जुड़े अधिकांश पेशा तथाकथित रूप से पिछड़ी अथवा अस्पृश्य जाति के लोग ही अपनाते थे। तथाकथित रूप से ऊंची जाति हो अथवा अंग्रेज दोनों ने उसी परंपरागत ज्ञान और कौशल पर जोर दिया जिनसे उनका सीधा सरोकार था। उत्पादन से जुड़े तमाम शिल्पों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि 'जो देश अंग्रेजों के आने से पूर्व शिल्प-कला-उद्योग में शीर्ष पर था, जिसकी स्टील की गुणवत्ता विदेशी स्टील से कहीं बेहतर थी, शिक्षण कला और जहाज निर्माण कला में भी जो बहुत आगे था', वह धीरे-धीरे दूसरों पर आश्रित होता चला गया।[5] गांधी ने इसे बड़े नजदीक से महसूस किया। इसीलिए उन्होंने नई तालीम के माध्यम से न केवल उस विशिष्ट कला-कौशल के पुनर्जागरण की कोशिश की अपितु शिक्षा को उन वंचितों के दरवाजे तक ले जाने की कोशिश की जिनमें कुछ तो कई हजार वर्षों से गाँव के ही सरहद पर देश निकाला का जीवन जी रहे थे।

गांधी ने जिस नई तालीम की योजना हमारे सामने रखी थे वह उनके वर्षों के चिंतन-मनन का परिणाम थी जिसकी शुरुआत दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष के दिनों में ही हो चुकी थी जब उन्होंने 'फीनिक्स' और कुछ समय बाद 'टालस्टाय' फार्म की स्थापना की थी। दोनों फार्म के नाम से ही हम उनकी गंभीरता का अंदाजा लगा सकते हैं। 'फीनिक्स' एक चिड़िया का नाम है जो अपने राख से पुनः जन्म ले लेती है। गांधी इसी बिना पर भारत में नई तालीम के माध्यम से उसके शिल्प और साहचर्य जीवन को पुनः स्थापित करना चाहते थे जिसका क्रम टूट चुका था। टालस्टाय उस समय के सबसे बड़े लेखक के रूप में प्रसिद्ध थे। मानवता की सेवा और हिंसा के विरुद्ध उनके लेखन की धूम थी। गांधी से उनका पत्र-व्यवहार भी हुआ था। प्रो. कृष्ण कुमार ने अपने एक आलेख में यह बताया कि गांधी 'टालस्टाय' की शिक्षा के प्रति उनके महत्त्वपूर्ण विचार 'education as a premeditate formation of men according to certain patterns is sterile] unlawful and impossible' से प्रायोगिक तौर पर इत्तिफाक रखते हैं। गो कि तब तक गांधी ने उनके इस आलेख को नहीं पढ़ा था। बाद में गांधी ने लिखा भी कि 'नए संसार की रचना के लिए शिक्षा भी नई तरह की होनी चाहिए।'[6]

गांधी के लिए नई तालीम एक शांत सामाजिक क्रांति है, जो धीरे-धीरे अपना काम करती है। वे अपने संघर्ष के दिनों में ही समझ गए थे कि तालीम को नौकरशाही के

गुलामी से मुक्त होना ही चाहिए। वरना राज्य अपने हिसाब से पाठ्यक्रम बनाएगा और उसे पढ़ाने की व्यवस्था करेगा। खास तौर से औपनिवेशिक राज्य में यह व्यवस्था अपने चरम पर पहुँच जाती है। गांधी इसके भुक्तभोगी थे। इसीलिए उनकी दृष्टि में आदर्श समाज वह है जो छोटा और आत्म निर्भर हो। उनकी इस कल्पना का मूर्त रूप भारतीय गाँव थे, जो सदियों से आत्मनिर्भर रहते आए थे। वे उस गौरव को पुनः स्थापित करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में शहरीकरण ने गाँव के परस्पर सहयोग के ताने-बाने को तोड़ा है और उसका भरपूर शोषण किया है। नई तालीम के तहत गाँव के विकास के साथ-साथ वहाँ के बच्चों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी जिससे वे अपने को हुनरमंद बना सकें तथा अपनी जरूरत के साथ-साथ स्थानीय समुदाय के साथ सहकार स्थापित कर सकें। यह सहकार उन्हें समाज के साथ घुलने-मिलने में मदद करने के साथ-साथ आत्मनिर्भर भी बनाएगा- 'मेरी नई तालीम धन पर निर्भर नहीं है। ...शिक्षा वही है जो 'आत्मनिर्भर' हो।'[7] दरअसल गांधी बहुत दूर की सोच रहे थे।

नई तालीम की योजना में गांधी 'शिक्षा के साहित्यिक पहलू की तुलना में उसके सांस्कृतिक पहलू को कहीं अधिक महत्त्व देते हैं।'[8] संस्कृति से उनका तात्पर्य है समग्र जीवन दर्शन जिसमें रसबोध, शीलबोध और व्यवहारबोध से लेकर कला-शिल्प तक सबका समावेश है। वस्तुतः नई तालीम 'त्रिगुण' के माध्यम से मनुष्य के संपूर्ण विकास पर जोर देती है। यह त्रिगुण कुछ और नहीं अपितु 'व्यक्ति-चरित्र-कला' ही है जो किसी भी समाज के विकास के आवश्यक अंग होते हैं। नई तालीम अपनी योजना में समाज के सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेद-भाव के चौदह वर्ष तक मुफ्त शिक्षा की वकालत करती है। इसमें स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने का उतना ही अधिकार है जितना कि पुरुषों को। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गांधी ने विद्यापीठों को गाँव तक ले जाने की वकालत की। 'आदमी साक्षरता अथवा विद्वत्ता से आदमी नहीं बनता, बल्कि सच्चे जीवन के लिए ली गई शिक्षा से बनता है'[9] नई तालीम की दूसरी विशेषता है। सच्चा जीवन उसी का हो सकता है जिसका चरित्र भी उत्तम हो। गांधी चरित्र-निर्माण पर बहुत जोर देते थे। वे तो यह मानते थे कि सिर्फ अक्षर कला का ज्ञान किसी भी छात्र के नैतिक उन्नति अथवा चरित्र निर्माण में कोई योगदान दे सकता है जिसकी जरूरत उसके समाज को है। नई तालीम बच्चों के नैतिक उत्थान, सामाजिक समरसता और सांप्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देने का काम करेगी। जैसा कि ऊपर हमने देखा है कि नई तालीम शिल्प केंद्रित होती है। यह पढ़ाई के साथ-साथ कौशल विकास पर भी ध्यान देती है। शिक्षा और कौशल विकास में अन्योन्याश्रित संबंध है। वे कहते हैं, 'मेरी धारणा है कि बुद्धि की सच्ची शिक्षा केवल हाथ, पैर, नेत्र, कान, नाक आदि शारीरिक अंगों के उचित

व्यायाम एवं प्रशिक्षण से ही प्राप्त की जा सकती है। ...शिक्षा से मैं यह अर्थ लेता हूँ कि वह बच्चे और मनुष्य की काया, बुद्धि और आत्मा में जो कुछ श्रेष्ठ है, उसे समग्र रूप से उभार दे। ... साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं होती। इसलिए मैं बच्चे की शिक्षा का आरंभ उसे किसी उपयोगी दस्तकारी को सिखाकर करूंगा और यह कोशिश करूंगा कि वह प्रशिक्षण आरंभ होते ही कोई न कोई चीज बनाने लगे। ...मेरी धारणा है कि शिक्षा की ऐसी प्रणाली के अंतर्गत बुद्धि और आत्मा का अधिकतम विकास किया जा सकता है।'[10] जैसा कि हम जानते हैं कि गांधी केवल सतही ज्ञान अथवा सुनी सुनाई बातों के आधार पर कोई बात नहीं कहते हैं। उनके हर वाक्य-विचार के पीछे सुदीर्घ निरीक्षण-परीक्षण होता है। उन्होंने अपने आश्रमों में शिक्षा के साथ कला-शिल्प को जड़ा था और उसके अच्छे परिणाम भी आए थे।

गांधी के मन में गाँव के प्रति अद्‌भुत राग है। वे हरक्षण अपना गाँव में ही बिताना चाहते हैं। उनके द्वारा स्थापित आश्रम इसके प्रमाण हैं। गाँव उनके लिए सत्य, अहिंसा, सादगी, निष्कपटता, श्रम का प्रतीक है। वे जोर देकर कहते हैं, '...अगर गाँव नष्ट होते हैं तो भारत भी नष्ट हो जाएगा।'[11] वे गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने पर बल देते हैं। गाँव अपनी आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु का स्वयं निर्माण करे। वे चाहते हैं कि ग्रामवासियों को अपने कला-कौशल में इतनी महारत हासिल कर लेना चाहिए कि उनके द्वारा तैयार की गई चीजें गाँव से बाहर निकलते ही हाथों-हाथ बिक जाय। इसलिए वे कहते हैं कि – 'मेरी योजना में प्राथमिक शिक्षा ग्रामोद्योग के माध्यम से दी जानी चाहिए।'[12] गांधी भारत की गरीबी से बखूबी परिचित हैं तभी तो कवीन्द्र के एक पत्र में जबाब देते हुए लिखते हैं- 'भारत एक घर है जिसमें आज आग लगी हुई है, क्योंकि इसे दिन पर दिन पुंसत्वहीन बनाया जा रहा है, यह भूख से मर रहा है, क्योंकि इसके इसके पास काम नहीं जिससे यह अपनी रोटी कमाये।'[13] दरअसल गांधी ने गांवों में देखा था कि वहाँ 'स्वस्थ' संस्कारों के बीज (भी) अशिक्षित मन और उंगुलियों में इधर-उधर बिखरे पड़े हैं और वे अपने आप उगकर क्रमहीन झाड़-झंखाड़ का रूप लेते हैं'। उनका मानना था कि नई तालीम के माध्यम से यदि 'थोड़ी सी चेष्टा की जाय तो इन्हीं उंगुलियों द्वारा लोक-शिल्प की 'सुजलाम-सफलाम' वाटिकाएं प्रत्येक जनपद में तैयार हो जाएंगी, प्रत्येक जनपद में लोक-शिल्प के श्रीनिकेत तैयार हो जाएँगे।'[14]

नई तालीम के तहत व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ गणित और विज्ञान की शिक्षा पर भी जोर देने की बात की गई है। इसके साथ ही इसमे साहित्य और संगीत का भी समावेश है। संगीत अनुशासन का पर्याय है। गांधी का मानना है कि 'मनुष्य न केवल बुद्धि है, न निपट पाशविक शरीर और न केवल हृदय अथवा आत्मा। समग्र मानव इन

तीनों के उचित और सामंजस्यपूर्ण योग से ही बनता है और शिक्षा की सच्ची योजना में इसी का समावेश होना चाहिए।'[15] स्पष्ट है कि नई तालीम मनुष्य के संपूर्ण विकास पर जोर देती है न कि एकांगी विकास पर। लेकिन यह विकास अपने लक्ष्य की पूर्ति तभी कर सकता है जब उसे वह शिक्षा मातृभाषा में दी जाय। विश्व के बड़े से बड़े शिक्षाविदों ने प्राथमिक शिक्षा के लिए मातृभाषा की वकालत की है। गांधी ने तो मातृभाषा की तुलना माँ के दूध से की है- 'मातृभाषा मनुष्य के मानसिक विकास के लिए उसी प्रकार स्वाभाविक है जिस प्रकार माँ का दूध शिशु के शरीर के विकास के लिए है।'[16] इसके लिए वे इंतजार करने के पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है कि 'शिक्षा का माध्यम तत्काल बदल देना चाहिए और प्रांतीय भाषाओं को हर कीमत पर उनका उचित स्थान दिया जाना चाहिए'।[17] दरअसल मातृभाषा में दी जाने वाली शिक्षा आसपास के लोगों से घुलने-मिलने का अवसर देती है। वर्तमान समय में जीवन में बिलगाव और बेगानगी बढ़ता जा रहा है। इस आपाधापी में बच्चे अपना बचपन खोते जा रहे हैं। ऐसे में स्कूल के माध्यम से ही हम सामाजिक एकता के पाठ को विद्यार्थियों को पढ़ा सकते हैं।

देश के बौद्धिक वर्ग के नकल करने की प्रवृत्ति पर गांधी की चिंता को कुबेरनाथ राय रेखांकित करते हुए लिखते हैं-'एकेडेमिक क्षेत्र में देशज चिंतन छूटता गया,पश्चिमी विचार और प्रणालियाँ विचार जगत पर छा गयीं। यह थी बौद्धिक उपनिवेशवाद की स्वीकृति जिसके लिए कुछ प्रलोभन तो थे, पर विशेष दबाब और आग्रह नहीं था। साहित्य और कला पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट था। अपनी जड़ों से कटा हुआ बौद्धिक वर्ग अनुकरण को ही उत्सवधर्मी बना रहा था'।[18] अपनी प्रसिद्ध कृति 'हिन्द-स्वराज' में गांधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है- 'मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा-पद्धति का आधार रखा है, उसने हमको गुलाम बना दिया है।'[19] हम यह समझने लगे हैं कि 'अँग्रेजी जाने बगैर कोई 'बोस' नहीं बन सकता। इससे बड़े अंधविश्वास की बात और कोई नहीं हो सकती''।[20] कला-साहित्य से लेकर दैनंदिन कार्यों तक में हमने पश्चिम की नकल करनी शुरू कर दी। फलस्वरूप हम अपने लोगों से दूर होते गए। अपने ही समाज का एक बड़ा हिस्सा इस नकल के चलते 'प्रस्तर-कुटी' का निवासी बन कठोर यंत्रणा में जीने को मजबूर हो गया। सच तो यह है कि शिक्षा का एक बड़ा उद्देश्य होता है- मनुष्य बनना। हम इसके माध्यम से अपना परिष्कार करते हैं। इसीलिए गांधी ने नई तालीम में 'स्वदेशी और अहिंसा' की वकालत की- 'अनुभव वही सबसे मूल्यवान होता है और देश की समृद्धि में सर्वाधिक योगदान करता है जो अपनी धरती से पैदा हुआ हो।'[21] जब तक हम अपने परिवेश से वाकिफ न हों हम देश क्या अपना भला भी नहीं कर सकते हैं। विपत्ति कभी अकेले नहीं आती है। गांधी इस बात को ठीक से समझते हैं। इसलिए

वे अहिंसा को जीवन-पद्धति के शास्त्र के रूप में देखते हैं। इसका समाज को लाभ भी है- 'अहिंसा की प्रकृति ही ऐसी है कि वह शक्ति को 'छीन' नहीं सकती, न यह उसका लक्ष्य हो सकता है। लेकिन अहिंसा उससे भी बड़ा काम कर सकती है, वह सरकारी तंत्र को हस्तगत किए बिना शक्ति को प्रभावी ढंग से नियंत्रित और निर्देशित कर सकती है। यही उसकी खूबी है।'[22] समाज में भाईचारा और एकता का इससे बड़ा माध्यम और क्या हो सकता है।

अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अपने एक उद्‌बोधन में वे कहते हैं– 'यहाँ तालीमी संघ में जो भी भवन हैं, वे स्थानीय सामान औए स्थानीय कारीगरों के मदद से बने हैं। इस तरीके से हमने अपने और यहाँ के लोगों के साथ एक जीवंत सम्बंध कायम कर लिया है। यह चीज स्वयं में लोगों के लिये एक तरह की शिक्षा है, और हमारे भावी शिक्षा कार्य की बुनियाद है।'[23] यहां हम देख सकते हैं कि गांधी पूरे स्थानीय समाज को एक छोटे से तालीमी भवन से जोड़ने की कोशिश करते हैं और उसमे सफल भी होते हैं। पर वे यहीं नहीं रूकते हैं- 'शिक्षा में मन और शरीर की सफाई की शिक्षा पहला कदम है। आपके आसपास की जगह की सफाई जिस प्रकार झाड़ू और बाल्टी की मदद से होती है, उसी प्रकार मन की की शुद्धि प्रार्थना से होती है।'[24] चूंकि संसार के सभी फसादों में 'मन'(मस्तिष्क) की ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसीलिए वे मन की सफाई पर विशेष जोर देते हैं। इसके लिए सबसे सरल उपाय भी बताते हैं– 'ईश्वर के असंख्य नाम हैं, लेकिन मेरी राय में सबसे सुंदर और उपयुक्त नाम सत्य है।'[25] इसे ही पतंजलि ने 'ईश्वर प्रणिधानानि' कहा है। वे आगे बढ़कर मनुष्य को उसकी सीमा का भी भान कराते हैं- 'जो बात व्यक्ति पर लागू होती है वही समाज पर लागू होती है। गांव का मतलब है व्यक्तियों का एक समुदाय, और मेरी नजर में यह विश्व एक विशाल गांव तथा सारी मानव-जाति एक कुटुम्ब है।' तदुपरान्त वे अपने साध्य अर्थात अहिंसक समाज की निर्मिति की ओर संकेत करते हुए कहते हैं- 'इस विराट जगत में मात्र प्राणी के रूप में मनुष्य का स्थान बहुत नगण्य है। ...शारीरिक दृष्टि से वह बहुत तुच्छ कीड़ा है। लेकिन ईश्वर ने उसे बुद्धि और अच्छे बुरे का भेद करने की क्षमता दी है। यदि हम इस क्षमता का उपयोग ईश्वर को जानने के लिये करें तो हम भलाई करनेवाली ताकत बन जायेंगे। इसी क्षमता का दुरूपयोग हमें बुराई का साधन बना देता है और हम महामारी की तरह धरती पर लड़ाई, खून-खराब, दु:ख और कष्ट फैला देते हैं।'[26] कहना न होगा कि गांधी ने नई तालीम के माध्यम से हमारे सामने एक अहिंसक समाज की मुकम्मल तस्वीर पेश की है। यदि हमने उनके द्वारा सुझाए गए रास्तों/उपायों के संदेश को पकड़ने में सफल होते हैं तो अब भी देर नहीं हुई है। अन्यथा आने वाली पीढ़ी शायद ही हमें माफ करे।

संदर्भ

1. गांधी वांगमय, खंड-48, पृ. 220
2. हरिजन, 10 मार्च 1946
3. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 5
4. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 365
5. सुधीन्द्र कुलकर्णी, म्यूजिक आफ द स्पीनिंग ह्वील, पृ. 137
6. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 362
7. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 366
8. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 365
9. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 363
10. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 365
11. यंग इंडिया, 30 अप्रैल 1941
12. हरिजन, 9 अक्तूबर 1937
13. यंग इंडिया, 13 अक्तूबर 1921
14. कुबेरनाथ राय, निषाद बांसुरी, पृ. 96
15. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 365
16. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 368
17. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 368
18. कुबेरनाथ राय, चिन्मय भारत, पृ. 96
19. सुधीन्द्र कुलकर्णी, म्यूजिक आव द स्पीनिंग ह्वील, पृ. 140
20. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 368
21. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 367
22. प्रभु एव राव, महात्मा गांधी के विचार, पृ. 124
23. हरिजन,19 नवम्बर 1944
24. वही
25. वही
26. वही

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

उच्च शिक्षा की पहुँच में बाधाएं और समता के अवसर
बिहार के महादलितों का केस अध्ययन

अमरदीप कुमार*

प्रस्तावना

वर्तमान अध्ययन बिहार के महादलितों की उच्च शिक्षा में पहुँच एवं उनके सम्मुख आने वाली बाधाओं पर केंद्रित है। बिहार सरकार द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक आधार पर महादलितों की पहचान सबसे उपेक्षित एवं वंचित तबके के रूप में की गई है। भारतीय संविधान में समानता, समता एवं आजादी जैसे प्रारूपों के बाद भी दलितों को उच्च शिक्षा में भागीदारी से वंचित रहना पड़ा है एवं सदियों से चली आ रही विभेदता बरकरार बनी हुई है। मानव अधिकार के नारे एवं राज्य नीति की संविधान में समावेश तथा संविधान निर्माता डा. भीमराव अम्बेडकर के अथक प्रयासों के बावजूद दलित के क्षेत्र उच्च शिक्षा में हाशिए पर हैं। आज़ादी के 65 वर्षों के बाद भी दलितों की शिक्षा में सामान्यत: एवं उच्च शिक्षा में विशेषत: बराबर की सहभागिता के स्वप्न अधूरे हैं। आज भी बहुत कम लोग उच्च शिक्षा में पहुँच पा रहे हैं और जो पहुच रहे हैं वह भी शहरी तथा तुलनात्मक रूप से बेहतर पृष्ठभूमि से हैं तथा ग्रामीण क्षेत्र के दलित एवं महादलित अभी भी उपेक्षित हैं और उच्च शिक्षा तक पहुँचने से पहले ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। ज्यादातर महादलित छात्र शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर ही पढ़ाई छोड़ देते हैं तथा कुछ ही उच्च शिक्षा तक पहुँच पाते हैं।

गाँवों एवं पिछड़े क्षेत्रों में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों का अभाव महादलितों का उच्च शिक्षा की पहुँच में बाधा का एक कारण हो सकता है इस कारण वर्तमान में शहर की ओर प्रवासन खासकर उच्च शिक्षा के लिए तथा आर्थिक एवं सामाजिक पूंजी का अभाव महादलित छात्रों को विशेषकर प्रभावित करती है।

उच्च शिक्षा में अनुसूचित जातियों की भागीदारी की समस्याओं के बारे में विभिन्न स्तरों पर कई शोधकर्त्ताओं और संगठनों द्वारा अध्ययन किया गया है और मोटे तौर पर इन

*शोध छात्र, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) नई दिल्ली-110016
(amardeepk05@gmail.com)

अध्ययनों में अनुसूचित जाति को समरूप समूह की तरह लिया जाता है जबकि समूह के अन्दर की अपेक्षाओं को दरकिनार किया गया है। यद्यपि सामूहिक रूप से भी इनकी सहभागिता कम है।

वर्तमान अध्ययन उच्च शिक्षा में महादलितों की सहभागिता को समझने के लिए है तथा यह सामाजिक न्याय की नीति को भी समझने की कोशिश करती है कि कैसे यह समावेशी है।

महादलित की अवधारणा

अनुसूचित जाति भारत में एक समान समूह नहीं है। उनके अंदर भी बहुत सारी विशेषताएं हैं। अनुसूचित जाति के अंतर्गत कुछ जातियां अपने आपको विकास के क्रम में खुद को विकसित करने में विफल रही हैं। इसका मतलब यह है कि विकास का सकारात्मक फायदे कुछ तबके तक नहीं पहुँच पाए हैं खासकर उच्च शिक्षा में सहभागिता जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से कम है। आर्थिक विकास एवं शैक्षिक विकास में आनुपातिक हिस्सेदारी अधूरी रह गयी है। यह वर्तमान सरकारों के लिए भी एक चुनौती बन गई है कि कैसे उन तबकों तक पहुँचा जा सके जो अभी भी विकास की प्रक्रिया से महरूफ हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 36 एवं 46 इस बात पर जोर देते हैं कि कैसे अनुसूचित जातियों एवं अनुसूतिच जनजातियों को मुख्यधारा में लाया जा सके। इन अनुच्छेदों को आधार मानकर सरकार ने विभिन्न स्तर पर विभिन्न योजनाओं को लागू किया है ताकि वंचित एवं शोषित तबकों का आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक विकास हो सके। यह पाया गया है कि कुछ वर्ग ही अनुसूचित जाति से इन योजनाओं का लाभ उठाने में सक्षम हुए हैं एवं ज्यादातर वर्ग इन योजनाओं का लाभ नहीं ले पाए हैं वे सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े रह गये हैं।

बिहार राज्य सरकार ने 2007 में ''महादलित आयोग की स्थापना कि ताकि अत्यन्त पिछड़ों की पहचान की जा सके एवं उनके लिए मौजूदा योजनाओं के अलावा विशेष योजना चलायी जा सकें एवं उन्हें मुख्यधारा में शामिल किया जा सके। महादलित आयोग का मुख्य उद्देश्य था अनुसूचित जाति की शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक अध्ययन करना एवं उसी आधार पर विशेष उपायों का सुझाव देना ताकि विशेष योजनाएं चलायी जा सकें एवं उनकी आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक उन्नति की जा सके। अब तक महादलित कमीशन ने 21 जातियों की पहचान महादलित के रूप में की है जो राज्य की कुल दलित जनसंख्या का 71% है। सिर्फ पासवान समुदाय को महादलित की श्रेणी से बाहर रखा गया है।

विभिन्न योजनाओं को लागू करने के लिए राज्य सरकार ने 'महादलित विकास मिशन' की स्थापना की है। मिशन का मुख्य उद्देश्य है कि महादलित समुदाय का सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास के लिए उपयुक्त योजनाओं का निर्माण करना एवं उन्हें विकास की मुख्यधारा में लाना।

पूर्व अध्ययन

महादलित अनुसूचित जाति के अन्दर सबसे पिछड़े तबके हैं तथा अत्यन्त ही वंचित एवं शोषित वर्ग के हैं। महादलित सामाजिक, आर्थिक रूप से भी अत्यन्त पिछड़े हुए हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि महादलित राष्ट्रीय स्तर पर चिन्हित समूह नहीं है एवं दलितों में दलित पर चर्चा कई राज्यों जैसे- पंजाब, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल आदि राज्यों में बार-बार हुई है। सामाजिक एवं आर्थिक परिदृश्य में आगे बढ़ने की ओर तथा असमान रूप से जातिगत सहभागिता साथ-ही-साथ खुद को पिछड़ने की चिन्ता ने इन उपरोक्त राज्यों में न केवल अन्तर्जातीय बल्कि दलित के अन्दर आपस में संघर्ष बढ़ाया है (चौधरी 2011)। सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर उठने की आवश्यकता, शैक्षिक संस्थानों में सहभागिता की जरूरत तथा सामाजिक न्याय की नीतियों के फायदे उठाने की जरूरतों ने उपरोक्त राज्यों में आपसी संघर्ष को जन्म दिया है। सरकार के विभिन्न अंशों द्वारा अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही हैं ताकि इस वंचित तबके के छात्रों की सहभागिता उच्च शिक्षा में बढ़ सके। विभिन्न अध्ययन बताते हैं कि केवल एक छोटा-सा तबका ही इन विभिन्न योजनाओं से लाभान्वित हुआ है एवं तुलनात्मक रूप से बेहतर पृष्ठभूमि के छात्र उच्च शिक्षा का लाभ ले पा रहे हैं। (चालन 1988, शाह एवं पटेल 1977, वी. एवं रेड्डी, 1985)।

कुछ अध्ययन आरोप लगाते हैं कि शिक्षा अक्सर अनुसूचित जातियों के बीच भी बुर्जुआ मूल्यों का परिचय और उनके दमन और उत्पीड़न के बारे में कोई क्रांतिकारी चेतना की लहर को रोकता है। अध्ययन में यह पाया गया है कि शिक्षा प्रणाली ने न केवल विभिन्न जातियों के बीच भेदभाव को बढ़ाया है बल्कि अनुसूचित जातियों के बीच भी विभाजन पैदा करती है (चिटनीस 1977, सिंह 1986, यादव 2009) के अनुसार वर्तमान आरक्षण व्यवस्था के लाभार्थी बहुत ही सीमित समुदाय के हैं एवं इसे और अधिक जरूरतमंदों तक पहुँचना चाहिए नहीं तो सामाजिक न्याय की नीति को पुनः बेहतर लक्ष्यीकृत करने की आवश्यकता होगी। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सामाजिक कल्याण की नीतियों की वितरणात्मक व्यवस्था इतनी खराब है कि

हमारे समाज के कमजोर वर्गों जैसे महादलित समुदाय लाभ उठाने में कठिनाइयों का सामना करते हैं। संस्थान भी अपनी जिम्मेदारी को ठीक से निभा नहीं पाते हैं। दलित छात्रों की समस्या तो विद्यालय स्तर से ही शुरू की जा सकती है एवं उच्च शिक्षण संस्थान तो उसे बनाये रखने में मदद करता है या बनाए रखता है (थोराट 2007, वानखेड़े 2006)। शैक्षिक असमानता विभिन्न स्तरों पर सरकार के लिए चिंता का कारण रही है। भारत में सामाजिक स्तरीकरण व्यापक रूप से जाति एवं धर्म के नाम पर बने हैं और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न समूहों के बीच असमानता सर्वव्याप्त है (मा.सं. 2006, गोविंदा 2002, प्रो. टीम 1999, थोराट न्यूमेन 2009)।

सामाजिक न्याय की नीति अनुसूचित जातियों को न्याय प्रदान करने और जातिगत असमानताओं के उन्मूलन के लिए उनकी आबादी के हिसाब से बनाई गई है लेकिन इस नीति ने असमान रूप से पहुँच के कारण आपसी विभेद को बढ़ाया है। अनुसूचित जाति या दलित के अन्दर उप-जातिकरण की बात 1975 में पंजाब में की गई एवं यह लंबे समय तक चलती रही (जोधका और कुमार 2007)। बढ़ रही उपजातिगत चेतना ने आंध्र प्रदेश में भाषा एवं मडिया के बीच संघर्ष को पैदा किया। (चिन्नैया 2009, कुमार 2012) लिखते है कि यहां दलित एक नया शब्द है। वर्तमान समय में जोकि सामाजिक यंत्रीकरण के बदलते परिदृश्य में समावेशी नीति का उत्पाद है। बदलते परिवेश में अधिकतम पिछड़ी जातियों को साथ लेकर चलने की प्रतिबद्धता में बिहार सरकार ने ज्यादातर दलितों को महादलितों की श्रेणी में रखा है। हालांकि जब इसे अंबेडकर की दृष्टि से देखते हैं तो यह स्पष्टत: दलित एकता को तोड़ने की साजिश लगती है, क्योंकि उनकी राय में सामाजिक न्याय की लड़ाई में दलितों को एकजुट होने की आवश्यकता है। परंतु वर्तमान परिदृश्य में इसे समावेशी नीति से जोड़कर अत्यधिक देखा जाता है। रॉय (2011) लिखते हैं कि यह उप-श्रेणीकरण एक अत्यन्त केंद्रित समूह पर सामाजिक कल्याण की नीतियों को लागू करने के तहत की गई तथा ज्यादातर समूहों को सामाजिक कल्याण की नीतियों से बाहर रखने की कोशिश हो सकती है।

उपरोक्त अध्ययन अनुसूचित जातियों के उप-श्रेणीकरण पर आधारित है एवं उच्च शिक्षा में महादलितों की सहभागिता को उजागर नहीं कर पाते हैं। उच्च शिक्षा मानव के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन है जिसके द्वारा मनुष्य आपसी सामाजिक, आर्थिक स्थिति को सुधार सकता है तथा समाज एवं देश के विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

उच्च शिक्षा का महत्व एवं महादलित

शिक्षा एवं विशेषकर उच्च शिक्षा न केवल व्यक्ति विशेष को बल्कि समाज, राज्य एवं देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। उच्च शिक्षा में शोध कर रहे विद्वानों के अनुसार यह मजदूर बाजार में मजदूरों को उनकी अधिकतम मजदूरी तथा अन्य सुविधाएं पाने का हकदार बनाती है। हालांकि नोवेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन लिखते हैं, ''शिक्षा अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्ति अन्य सारी जागरूकता लाती है।'' मानव क्षमता को एक विशेष सम्पत्ति मानने वाले विशेषज्ञों (वेकर, 1960; शुल्ज़ 1961; डेनियन, 1962) ने इस बात पर जोर दिया है कि शिक्षा मानव को मानव संसाधन में तब्दील करती है, वृद्धि विकास एवं खुशहाली लाने का एक महत्वपूर्ण साधन है तथा राष्ट्र की मानव क्षमता को बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

महादलित खासकर प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक हरेक स्तर पर विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के कारण विद्यालय जाना छोड़ देते हैं एवं उच्च शिक्षा में पहुँचने में कठिनाइयों का सामना करते हैं। अशिक्षित होने के कारण अधिकतर मजदूर या तो कृषि मजदूर हैं या बंधुआ मजदूर, यद्यपि यह प्रथा बन्द कर दी गई है एवं कानूनन अपराध बना दिया गया है फिर भी यह अपने रूप बदलकर प्रचलित है।

उच्च शिक्षा महादलितों को न केवल परंपरागत मजूदरी पेशा से बाहर निकाल सकती है बल्कि उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में भी सुधार ला सकती है तथा विकास की विभिन्न योजनाओं के बारे में उनकी चेतना को बढ़ा सकती है और वे अपने अधिकार के प्रति अधिक सजग हो सकते हैं।

अत: इन सब परिस्थितियों में इस बात की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है कि कैसे महादलित समुदाय के छात्र उच्च शिक्षा में पहुँच पाते हैं एवं किस तरह सामाजिक न्याय की नीति उन तक पहुँचती है। यह अध्ययन यह भी जानने की कोशिश करता है कि दलितों के अन्दर कौन-कौन से समुदाय उच्च शिक्षा में पहुँच पाते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

(i) महादलित छात्रों के सम्मुख उच्च शिक्षा की पहुँच की प्रक्रिया में बाधाएं एवं समस्याएं।

(ii) अन्तराजातीय नामांकन में विभेद एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं में सहभागिता।

(iii) अनुसूचित जातियों के लिए सामान्यत: एवं महादलित के लिए विशेषत: नीतियों का विश्लेषण।

अध्ययन की शोध प्रविधि

वर्तमान अध्ययन एक वर्णनात्मक एवं अनुभवजन्य अध्ययन है यह अध्ययन महादलित छात्रों की उच्च शिक्षा में पहुँच, भागीदारी तथा उनके अनुभवों को समझने में मदद करता है। वर्तमान अध्ययन के लिए शोधार्थी ने क्षेत्र में आकर आंकड़े एकत्र किये। इन प्राथमिक आंकड़ों को एकत्र करने के लिए शोधार्थी ने एक कॉलेज के एक सत्र (2013–14) में नामांकित हुए सारे छात्रों के नामांकन प्रपत्रों का अध्ययन किया तथा उनसे बहुत सारी जानकारियां एकत्र कीं। जैसे– उनके पूर्व विद्यालय का स्थान, उनके पूर्व परीक्षा में प्राप्त हुए अंक एवं अन्य। इस सबके अलावा शोध छात्र ने कुछ उपकरण बनाये और आंकड़े एकत्र किये। जैसे– संरचनात्मक साक्षात्कार, अवलोकन, फील्ड नोट इत्यादि।

अत: प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों तरह के आंकड़ों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों के लिए महादलित आयोग से प्राप्त सूचनाएं, शिक्षा कल्याण विभाग से प्राप्त आंकड़े, जनगणना आंकड़े एवं अन्य आधार सामग्री से यह समझने की कोशिश की गई है कि कैसे विभिन्न समूह के छात्र छात्रवृत्ति योजना का लाभ उठा रहे हैं।

अन्य स्रोतों के लिए महादलित विकास मिशन के द्वारा उपलब्ध आंकड़ों का भी उपयोग किया गया है। छात्रों के साथ साक्षात्कार का उद्देश्य उनके अनुभवों को समझना एवं उन्हें अध्ययन में शामिल करना था ताकि उनकी वास्तविक समस्या को सामने लाया जा सके।

आंकड़ा एकत्र करने के लिए बिहार के गया जिला चुना गया, क्योंकि यह जिला महादलितों की सबसे घनी आबादी वाला जिला है। यहाँ की लगभग 30% प्रतिशत जनसंख्या दलित है। अत: इस जिले को प्रस्तुत अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण जनसंख्या–आधार एवं पिछड़ेपन में भी उच्च स्थान प्राप्त है।

शोध की मुख्य बातें

भारत में उच्च शिक्षा में सहभागिता भी उसकी सामाजिक विविधता को प्रतिबिंबित करता है। सामाजिक रूप से प्रभावशाली समुदाय उच्च शिक्षण संस्थानों में अपना प्रभुत्व रखते हैं। उच्च शिक्षा भी जाति, वर्ग, क्षेत्र एवं लैंगिक आधार पर बँटा हुआ है। उच्च शिक्षा में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े तबके के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेदों का

आधार बनाते हुए आरक्षण की व्यवस्था की गई है ताकि सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना की जा सके। अखिल भारतीय उच्चतर शिक्षा सर्वेक्षण (2011–12) के आंकड़े बताते हैं कि कुल नामांकन का अनुसूचित जाति की सहभागिता 12.5% अनुसूचित जनजाति की सहभागिता 4.2% एवं अन्य अल्पसंख्यक की सहभागिता 2.1% है। वर्तमान नामांकन उनके जनसंख्या के अनुपात से कम है तथा यह दर्शाते हैं कि सामाजिक न्याय की नीति अभी भी जरूरतमंदों तक नहीं पहुँच पा रही है या नीतियों को सही तरीके से नहीं लिया जा रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन महादलितों की उच्च शिक्षा में भागीदारी पर केंद्रित है। प्रथमत: अनुसूचित जाति के पूरे समूह का नामांकन देखा गया तथा यह समझने की कोशिश की गई है कि कालेज कैसे नामांकन देते हैं तथा कैसे आरक्षण की नीतियों का पालन करते हैं। पिछले चार साल के नामांकन आंकड़ों (स्नातक स्तर के) की गणना की गई तथा उनसे यह समझने की कोशिश की गई कि विभिन्न समूह के छात्रों की भागीदारी का प्रतिशत क्या है।

तालिका–1

सामाजिक श्रेणी	**नामांकन (%)**	**नामांकन (%)**	**नामांकन (%)**	**नामांकन (%)**
	2010	2011	2012	2013
सामान्य	33.42	31.71	36.98	31.73
अनुसूचित जाति	15.54	16.67	14.9	14.75
अनुसूचित जनजाति	.32	.17	.10	.22
पिछड़ा वर्ग 1	22.43	22.69	20.73	23.79
पिछड़ा वर्ग 2	26.29	28.76	27.39	29.51
कुल	**100**	**100**	**100**	**100**

स्रोत: महाविद्यालय रिकार्ड

उपरोक्त आंकड़े स्पष्ट बताते हैं कि महाविद्यालय अपने स्तर पर नामांकन में आरक्षण नीति का पालन कर रहे हैं परन्तु इस पर और अधिक गहराई से सोचने की जरूरत है। आरक्षण नीति का आधार था जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से भागीदारी सुनिश्चित करना। अगर जनसंख्या का प्रतिशत अधिक है तो उसी हिसाब से भागीदारी का प्रतिशत

भी बढ़ाने की आवश्यकता है अन्यथा अत्यधिक उच्च शिक्षा की मांग के बावजूद भी ज्यादातर छात्र उच्च शिक्षा से बाहर ही रहेंगे। अत: सामाजिक न्याय की नीतियों को संस्थाओं को भी सही तरह से समझने की आवश्यकता है ताकि अधिक से अधिक वंचित तबके के छात्रों को उच्च शिक्षा में प्रवेश मिल सके।

चूंकि प्रस्तुत अध्ययन महादलित छात्रों की सहभागिता को लेकर है अत: आगे सिर्फ महादलित छात्रों पर ही चर्चा केन्द्रित होगी। उच्च शिक्षा में महादलितों के बीच नामांकन में विभेदता को भी महाविद्यालय के नामांकन रिकार्ड के द्वारा अध्ययन किया गया तथा यह समझने की कोशिश की गई कि किस तरह महादलितों के अंतर्गत विभिन्न समूहों में उच्च शिक्षा के प्रवेश में विविधता व्याप्त है। यह पाया गया है कि महाविद्यालय सामाजिक न्याय की नीतियों के तहत 15% छात्रों को जो कि अनुसूचित जाति की श्रेणी से आते हैं, नामांकन देती है। यह समझने की जरूरत है कि वे छात्र कौन हैं या किस जाति से हैं? उनकी स्कूली शिक्षा कहाँ हुई है, उनकी पारिवारिक शैक्षिक पृष्ठभूमि क्या है? उनका पूर्व परीक्षा में प्रदर्शन कैसा रहा है। इत्यादि।

आंकड़ें बताते हैं कि कुल 21 महादलित जातियों में से सिर्फ 6 जाति के छात्र ही उच्च शिक्षा में पहुँच पा रहे हैं बाकी अभी भी उच्च शिक्षा से बाहर हैं। इन 6 जातियों में धोबी, पासी, चमार, राजवार, मुसहर एवं भूईयाँ मुख्यत: उच्च शिक्षा में पहुँच पाते हैं। इन जातियों में आपस में भी इनकी जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से विभिन्नता है। इन विभिन्न जातियों की जनसंख्या के प्रतिशत को स्थिर मानते हुए अगर इनके नामांकन का अनुपात एवं इनकी जनसंख्या के प्रतिशत के हिसाब से देखा जाय तो धोबी, पासी एवं चमार ठीक स्थिति में हैं जबकि भूईयाँ, मुसहर एवं राजवार की नामांकन में साझेदारी उनकी जनसंख्या की अनुपात से बहुत ही कम है। गया जिले में भूईयाँ जाति की आबादी उस महादलित जनसंख्या की आबादी का लगभग 54% है जबकि इनका नामांकन सहभागिता 6-5% है जो अत्यन्त ही कम है। इसका मुख्य कारण है कि भूईयां जाति के लोग मुख्यत: कृषि पर आश्रित हैं या गांवों में रहते हैं, तथा उच्च शिक्षा के लिए उनके रास्ते में बहुत सारी बाधाएं हैं जैसे- उच्च शिक्षा केंद्रों का शहरों में केंद्रित होना तथा माध यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों का गांवों में अभाव होना तथा गरीबी इत्यादि।

इसी तरह मुसहर जाति के लोगों की भी स्थिति अच्छी नहीं है एवं उच्च शिक्षा में सहभागिता नगण्य है। इन सभी जातियों के लिए उच्च शिक्षा में पिछड़ेपन का मुख्य कारण गरीबी, परंपरागत एवं कृषि क्षेत्र में माता पिता का संलग्न होना, उच्च शिक्षा केन्द्रों की दूरी एवं उनका शहरों में केंद्रित होना इत्यादि।

उच्च शिक्षा की पहुँच में महादलित छात्रों की बाधाएं

जैसाकि पहले ही यह वर्णन किया गया है, किस तरह से महादलित छात्र उच्च शिक्षा की पहुँच में समस्याओं का सामना करते हैं। यह अनुभाग क्रमवार तरीके से वर्णन करने की कोशिश करता है।

अध्ययन के दौरान शोधार्थी ने एक वर्ष (2013–14) के नामांकन पत्रों या प्रवेश पत्रों को जांचने के बाद जो आंकड़े पाये वो चौंकाने वाले हैं। प्रथमत: यह समझने की कोशिश की गई थी कि उच्च शिक्षा में नामांकन से पहले उनके पूर्व के विद्यालय की भौगोलिक स्थिति क्या है। यहाँ भौगोलिक स्थिति का मतलब था कि उनके पूर्व विद्यालय की स्थिति क्या है। यहाँ भौगोलिक स्थिति का मतलब था कि उनके पूर्व विद्यालय शहर में, प्रखंड मुख्यालय में या गांव में अवस्थित थे। ये आंकड़े बताते हैं कि 77% से अधिक छात्रों का पूर्व विद्यालय या पढ़ाई शहरी क्षेत्र में हुई है।

तालिका–2 : पूर्व विद्यालय की स्थिति

जातियां	ग्रामीण स्तर (%)	प्रखंड स्तर (%)	जिला स्तर (%)	कुल (%)
भूइयाँ	0.00	100.00	0.00	100
मेहतर	0.00	75.00	25.00	100
मुसहर	0.00	50.00	50.00	100
धोबी	0.00	75.00	25.00	100
पासी	0.00	89.66	10.34	100
चमार	0.00	78.57	21.34	100
कुल	100	100	100	100

स्रोत: प्रवेश फार्म (2013–14)

उपरोक्त आंकड़े यह साबित करते हैं कि किस तरह उच्च माध्यमिक विद्यालयों का ग्रामीण क्षेत्रों में अभाव है तथा सिर्फ वही छात्र उच्च शिक्षा में पहुंच रहे हैं जो अपनी उच्च माध्यमिक शिक्षा या तो शहर में प्राप्त करते हैं या प्रखंड मुख्यालय से, परंतु ज्यादातर छात्र शहरी विद्यालयों से ही आते हैं। अत: उच्च शिक्षा में पहुँच शहरी छात्रों के लिए आसान है एवं ग्रामीण पृष्ठभूमि के छात्रों के लिए अत्यंत ही कठिन। ग्रामीण पृष्ठभूमि के सिर्फ वही छात्र शहर जाते हैं जो आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सम्पन्न हैं। ग्रामीण पृष्ठभूमि

के छात्र खासकर महादलित समूह के छात्र को शहर तक पहुंच एक बड़ी समस्या है जो उन्हें उच्च शिक्षा से वंचित रखने की कोशिश करती है।

उपरोक्त आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भौगोलिक स्थिति उच्च माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए काफी महत्वपूर्ण है एवं खासकर वंचित तबकों के लिए जैसे- दलित एवं महादलित, जो गाँव में केंद्रित हैं।

छात्रों के पूर्व विद्यालयों की भौगोलिक स्थिति के बाद उनके पूर्व परीक्षा में प्राप्तांकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है खासकर उच्च शिक्षा नामांकन में। भारत में उच्च शिक्षा प्रतिभा पर आधारित है। इसका मतलब है कि नामांकन के समय महाविद्यालय दाखिले के लिए उच्च प्रतिभा या उच्च प्राप्तांक वाले छात्रों को प्राथमिकता देते हैं। प्रस्तुत तालिका द्वारा कुछ आंकड़े दर्शाने की कोशिश की गई है।

तालिका-3
पूर्व परीक्षा का प्राप्तांक

जातियाँ	प्रथम श्रेणी (%)	द्वितीय श्रेणी (%)	तृतीय श्रेणी (%)	कुल (%)
भूइयाँ	66.66	33.34	0	100
मेहतर	50.00	50.00	0	100
मुसहर	—	—	0	100
धोबी	72.7	27.3	0	100
पासी	73.9	26.1	0	100
चमार	87.5	12.5	0	100

डाटा स्रोत: प्राथमिक प्रवेश फार्म (2013-14)

उपरोक्त आंकड़े छात्रों की पूर्व परीक्षा के प्राप्तांक दर्शाते हैं तथा ये उनके उच्च शिक्षा में प्रवेश के आधार भी हैं जिसके आधार पर उन्हें दाखिला मिला है। आंकड़े यह स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि ज्यादातर छात्र प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नामांकन की प्रक्रिया पूर्ण रूप से प्रतिभा के आधार पर है। यह पहले ही देखा जा चुका है कि ज्यादातर छात्र शहरी विद्यालयों से उत्तीण हुए हैं। दोनों आंकड़ें स्पष्ट करते हैं कि कैसे उच्च शिक्षा एक खास वर्ग तक सीमित है। प्रतिभा आधारित नामांकन प्रक्रिया ज्यादातर वंचित तबके के छात्रों को छांटने की प्रक्रिया है। महादलित पृष्ठभूमि के ज्यादातर

छात्र एवं छात्राएं उस न्यूनतम योग्यता तक नहीं पहुंच पाते हैं क्योंकि उनके विद्यालय खासकर जो कि ग्रामीण एवं प्रखंड में स्थित हैं, उस न्यूनतम प्राप्तांक तक पहुँचने में ज्यादा मदद नहीं कर पाते हैं।

उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए अब वंचित तबके से मांग बढ़ी है एवं नामांकन प्रक्रिया 15% तक कुल दलित छात्रों को आरक्षण की व्यवस्था देती है, अत्यधिक संख्या में आवेदन के कारण महाविद्यालय उच्चतर अंक वाले छात्रों को ही प्राथमिकता देते हैं। उच्चतर अंक लाना अपने आप में ही एक बहस का मुद्दा है। जो छात्र शहरी पृष्ठभूमि के हैं उन्हें शहर में अतिरिक्त भुगतान करके निजी संस्थानों से कोचिंग आदि की मदद मिल जाती है तथा वे उच्च अंक लाने में सफल हो जाते हैं। जबकि ग्रामीण पृष्ठभूमि के महादलितों को इन सारी सुविधाओं का अभाव है एवं उनकी आर्थिक स्थिति भी उनके रास्ते में बड़ी बाधा है। कम अंक के कारण यहाँ महादलित छात्रों को नामांकन से वंचित रहना पड़ता है साथ-ही-साथ वे नौकरी के लिए भी आवेदन करने में अपने आपको अयोग्य समझते हैं। उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रतिभा को प्राथकिता दी जाती है। परन्तु यह सामाजिक विभेदता/असमानता को बढ़ाता है तथा समता एवं समानता आधारित समाज के निर्माण में बाधा पैदा करती है।

अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि जो भी विद्यालय एवं महाविद्यालय नामांकन के लिए छात्रों के अंक, उनकी तीव्रता, योग्यता एवं उपलब्धि को आधार मानते हैं वे कहीं न कहीं समाज में विषमता पैदा करते हैं तथा सामाजिक असमानता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

छात्रावास एवं छात्रवृत्ति वितरण में समस्या

छात्रावास एवं छात्रवृत्ति पाना छात्रों के लिए किसी जंग जीतने से कम नहीं है। छात्रवृत्ति पाने के लिए छात्रों को आवेदन करने से लेकर पाने तक कभी-कभी एक वर्ष लग जाता है। आवेदन की प्रक्रिया ऑनलाइन होने के कारण छात्रों को साइबर कैफे पर निर्भर रहना पड़ता है एवं उन्हें मनमाने ढंग से उसकी फीस देनी पड़ती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि आनलाइन प्रक्रिया में कोई गलती हुई तो वह छात्र की खुद की गलती होगी और इससे उन्हें खुद वंचित होना पड़ेगा तथा कोई अन्य जिम्मेदार नहीं होगा। महाविद्यालय में कंप्यूटर की व्यवस्था का अभाव उनकी समस्याओं को बढ़ा देता है।

यह पाया गया है कि जिस छात्र ने उच्च शिक्षा में प्रवेश लिया है उन्होंने प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति मिली है। अत: छात्रवृत्ति योजना को अच्छे ढंग से लागू करने की आवश्यकता

है ताकि सभी छात्र उसका लाभ उठा सकें। पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति भी नामांकन की तरह ही केवल छः महादलित समुदाय के छात्र एवं छात्राओं तक पहुँच पा रही हैं। जिस तरह महादलित छात्रों में नामांकन में विभेदता पाई गई है उसी तरह छात्रवृत्ति के वितरण में भी विभेदता है क्योंकि उन सारे छात्रों की छात्रवृत्ति के लिए आवेदन करने का हक है जिनकी पैतृक आय 2 लाख रुपए वार्षिक से कम है। छात्रवृत्ति पाने की प्रक्रिया को सरल बनाने की आवश्यकता है एवं महाविद्यालयों के अन्दर ही इंटरनेट एवं कंप्यूटर की सुविधा एक कारगर उपाय हो सकती है।

छात्रावास की समस्या महादलित छात्रों के लिए एक बड़ी समस्या है। महाविद्यालय के अन्दर छात्रावास का अभाव होना सामान्यतः छात्रों को दलित छात्रावास की ओर रुख करने को मज़बूर करती है और वहाँ पर पहले से मौजूद छात्र भी नए छात्रों को प्रवेश में बाधा पैदा करते हैं। दलित छात्रावास एक तरह से उन लोगों का अड्डा बन गया है जिनका राजनीतिक पृष्ठभूमि/सहयोग हो एवं जिनके कोई रिश्तेदार वहाँ रहकर पढ़ाई कर रहे हों उन्हें आसानी से छात्रावास में प्रवेश मिल जाता है।

दलित छात्रावास के रख-रखाव की जिम्मेदारी जिला कल्याण पदाधिकारी पर होती है। छात्रावास की अच्छी व्यवस्था भी छात्रों की उच्च शिक्षा की पहुँच में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। महादलितों के लिए नये छात्रावासों की घोषण की गई है, उनके निर्माण के बाद यह महादलित छात्रों के लिए एक प्रेरित करने वाली योजना हो सकती है।

सामाजिक न्याय की नीति और कार्यान्वयन

सामाजिक न्याय की नीति वास्तविक रूप से भारत के संविधान में ही सन्निहित है। भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में सामाजिक न्याय की नीतियों की स्पष्टः व्याख्या की गई हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है तथा अनुच्छेद 15 में राज्य के द्वारा किसी भी भारतीय नागरिक के साथ उसके लिए लैंगिक, जाति, धर्म एवं जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक है। यह राज्य सरकार को अधिकार देता है कि किसी भी सामाजिक, शैक्षिक रूप से पिछड़े या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के विकास के लिए विशेष व्यवस्था करे। अनुच्छेद 16 के अनुसार राज्य सरकारी संस्थानों में समाज के कमजोर वर्गों जो पिछड़े हुए हैं जैसे- कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए आरक्षण की व्यवस्था कर सकता है। अनुच्छेद 17 के द्वारा भारतीय समाज में अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है और इसे दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 46 विशेष रूप से पिछड़े एवं वचित तबकों विशेषकर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों को

शैक्षिक एवं आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है। इसी तरह अनुच्छेद 330 लोकतांत्रिक संस्थानों एवं सेवाओं में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान करता है।

भारतीय संविधान निर्माता काफी दूरदर्शी थे एवं साथ ही शताब्दियों से चली आ रही सामाजिक विषममताओं को देखते हुए संविधान को सामाजिक न्याय पर आधारित बनाया गया तथा वंचित तबकों को सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान किये गए। उपरोक्त अनुच्छेदों को आधार बनाकर भारत सरकार ने समय-समय पर कानून में बदलाव लाकर वंचित तबकों को सुरक्षा प्रदान करने की कोशिश की है।

शैक्षिक संस्थानों में अनुसूचित जातियों के लिए 15% आरक्षण की व्यवस्था की गई है। अनुसूचित जातियों की उनकी जनसंख्या के हिसाब से उनकी उच्च शिक्षा में भागीदारी हो। परन्तु अभी भी अनुसूचित जातियों की भागीदारी 15% तक सुनिश्चित नहीं हो सकी है। इसके कई कारण है। प्रथमत: 15% आरक्षण राष्ट्रीय पर लागू किया गया परन्तु विभिन्न हितधारकों द्वारा इसे विभिन्न तरीके से लिया गया है। अधिक घनी आबादी वाले क्षेत्र में संस्थान 15% से अधिक नामांकन आरक्षित कोटे से नहीं देते हैं एवं कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में अनुसूचित जाति का प्रतिनिधित्व कम ही रह पाता है। इस कारण राष्ट्रीय स्तर के आंकड़े कुल नामांकन का 15% के स्तर तक नहीं पहुँच पाते हैं। अत: आवश्यकता है कि अधिक महादलित आबादी वाले क्षेत्रों में जनसंख्या अनुपात से क्षेत्रों में आरक्षण देने की आवश्यकता है ताकि भागीदारी के प्रतिशत को कम से कम 15% तक सुनिश्चित किया जा सके है।

अनुसूचित जातियों के छात्र कई समस्याओं के कारण अभी भी पूर्ण रूप से इसका सही लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। कुछ राज्यों में आरक्षण पाने की होड़ में अनुसूचित जातियों के अन्दर आपसी प्रतिबद्धता बढ़ी है।

अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए उच्च शिक्षा में छात्रवृत्ति का प्रावधान है। ये छात्रवृत्तियां उन सभी छात्र एवं छात्राओं के लिए उपलब्ध हैं जिनकी पारिवारिक वार्षिक आय 2 लाख रुपये से कम है। स्नातक स्तर के जो छात्र छात्रावास में रहते हैं उन्हें 570 रुपये प्रतिमाह मिलते हैं। जबकि दैनिक छात्रों या जो छात्रावास में नहीं रहते हैं उन्हें 300 रुपये प्रतिमाह मिलते हैं। वर्तमान समय में यह राशि बहुत कम है तथा कई वर्षों से इसमें संशोधन भी नहीं किया गया है। अत: इसमें संशोधन की आवश्यकता है।

अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए प्रत्येक जिले में छात्रावास बनाए गए हैं परन्तु उदासीनता के कारण इन छात्रावासों की स्थिति जर्जर है, छात्र ऐसी जर्जर स्थिति में रहने

को विवश हैं। सभी उच्च शिक्षण संस्थानों को अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी लेने की आवश्यकता है तथा उन्हें वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने की भी आवश्यकता है।

उपरोक्त सारी नीतियां अनुसूचित जाति को एक समान समूह मानते हुए बनायी गई है। उनमें समय-समय पर संशोधन की आवश्कता है। कुछ अध्ययन बताते हैं कि उपरोक्त नीतियाँ अधिकतर आवश्यकता वाले समूहों तक पहुँच नहीं पा रही हैं एवं एक छोटा समूह ही इनका फायदा उठा पा रहा है। सामाजिक न्याय की नीतियों के बावजूद अनुसूचित जाति का एक बड़ा तबका इन नीतियों का फायदा उठाने में असक्षम है क्योंकि समस्याएँ तो उच्च शिक्षा में पहुँचने से पहले ही शुरू हो जाती हैं। उच्च शिक्षा तो केवल उस समस्या को बरकरार रखती है।

बिहार सरकार ने सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक आधार पर अनुसूचित जातियों के अन्दर भी महादलित की पहचान की है तथा उनके लिए अनेक योजनाएँ चलायी है ताकि वे भी मुख्यधारा में आ सकें। इसके लिए बिहार सरकार ने 'महादलित विकास मिशन' नामक संस्था बनाई है जो सारी योजनाओं को सही रूप से सुचालित कर सके। ये सारी योजनाएँ केन्द्र द्वारा चालित योजनाओं के अतिरिक्त हैं जिनका लाभ सीधे महादलित तक पहुँच सके। महादलितों के लिए आवासीय भूमि योजना, महादलित जल आपूर्ति योजना, शौचालय योजना, बस्ती लिंक रोड योजना, महादलितों के लिए विशेष विद्यालय-छात्रावास एवं पोषाक योजना, दशरथ मांझी कौशल योजना, इत्यादि। ये सारी योजनाएँ कहीं-न-कहीं महादलितों को शिक्षा में मदद करती हैं। परन्तु विशेष छात्रावास योजना, विशेष विद्यालय योजना सीधे तौर पर महादलित छात्रों की शिक्षा के लिए हैं। सिर्फ दशरथ मांझी कौशल योजना उन्हें तकनीकी रूप से लैस करती है। परन्तु ये सारी योजनाएँ अभी शुरुआती दौर में हैं। महादलितों की उच्च शिक्षा के लिए खास नीति न होना चिंता का विषय है। राज्य सरकार को महादलितों की उच्च शिक्षा में सहभागिता को बढ़ाने के लिए माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय को महादलित बहुल क्षेत्रों में खोलने की आवश्यकता है। महादलित ग्रामीण छात्रों के लिए यातायात की सुविधा उपलब्ध कराने एवं उनके लिए विशेष छात्रवृत्ति प्रदान करने से उच्च शिक्षा में महादलितों की सहभागिता को बढ़ाई जा सकती है।

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय की नीति पर व्यापक रूप से विभिन्न शैक्षिक एवं राजनैतिक स्तर पर बहस हुई है परन्तु आजादी के 65 वर्षों के बाद भी वंचित समूह जैसे- महादलित उच्च

शिक्षा में हासिए पर हैं तथा विकास की दौड़ में काफी पीछे छूटे हुए हैं। समस्या केवल उच्च शिक्षा की पहुँच में या उच्च शिक्षा में नहीं है बल्कि समस्या तो विद्यालयी स्तर पर शुरू हो जाती है, एवं उच्च शिक्षा तो केवल उस समस्या को बनाए रखती है एवं समाज में असमानता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का अभाव महादलितों के लिए उच्च शिक्षा की पहुँच में एक बड़ी बाधा है या यह कहा जा सकता है कि उन वंचित तबकों को उच्च शिक्षा से बंचित रखती है। वंचित तबकों द्वारा उच्च शिक्षा की बढ़ती मांग के कारण महाविद्यालय अपना नामांकन आधार पर प्रतिशत बढ़ाते जा रहे हैं जिसके कारण सिर्फ शहरी एवं आर्थिक रूप से बेहतर छात्र ही प्रवेश पाते हैं। जबकि ज्यादातर छात्र नामांकन से वंचित रह जाते हैं। ज्यादातर महादलित ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं एवं प्रतिभा आधारित नामांकन प्रक्रिया उनके लिए प्रतिकूल है। अत: नामांकन के दौरान जनसंख्या के अनुपात से नामांकन प्रतिशत बढ़ाने की आवश्यकता है तथा साथ ही छात्रों की परिवारिक पृष्ठभूमि उनके लैंगिक, ग्रामीण एवं शहरी जैसी बातों को सम्मिलित करने की आवश्यकता है। पिछड़े, दूरदराज और ग्रामीण क्षेत्र के महादलितों को महाविद्यालय स्तर पर प्रवेश देते समय विशेष आवश्यकता है।

विद्यार्थी सेवा केन्द्र कई केन्द्रीय विश्वविद्यालय में सुचारु रूप से चल रहे हैं और लाखों छात्रों को इससे फायदा पहुँचाया जा सकता है। यदि इसे राज्य विश्वविद्यालयों में भी सुचारु रूप से चलाया जा सके तो ये केन्द्र छात्रों को विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए जरूरतमंद छात्रों की मदद कर सकते हैं। तथा समय-समय पर मार्गदर्शन कर सकते हैं एवं उन्हें उचित परामर्श दे सकते हैं। विद्यार्थी सेवा केन्द्रों को मजबूत बनाने तथा सभी महादलित छात्र एवं छात्राओं को आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। महादलित छात्रों के लिए विशेष छात्रवृत्ति उन्हें उच्च शिक्षा में प्रोत्साहित कर सकती है। महादलित छात्रों की पूर्ण सहभागिता के बिना पूर्ण रूप से सामाजिक न्याय की कल्पना नहीं की जा सकती है।

संदर्भ

चौधरी, सं.क. (2011) *क्लासीफिकेशन आफ दलित्स : लॉ एंड पालिटिक्स काउन्टर करेन्ट्स*

चिटनिस, सूमा (1981), *ए लाँग वे टू गो : रिपोर्ट आन अ सर्वे आफ सिड्यूल्ड कास्ट हाई स्कूल एंड कॉलेज स्टूडेन्ट इन 15 स्टेट्स आफ इंडिया,* नई दिल्ली

चालम, के.एस. (1988), *एजुकेशन एंड वीकर सेक्संस,* इंटर इंडिया पब्लिकेशन, दिल्ली

देशपांडे, सतीश एंड यादव, योगेन्द्र (2006), *रि-डिजाइनिंग अफरमेटिव एक्सन, कास्ट्स एंड वेनिफिट्स इन हायर एजुकेशन*

गोविंदा, आर. (2002), *इंडिया एजुकेशन रिपोर्ट,* आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी, नई दिल्ली

गो. आफ इंडिया (2006), *सोशल, इकोनोमिक एंड एजुकेशनल स्टेट्स आफ दी मुस्लिम कम्यूनिटी इन इंडिया,* अ रिपोर्ट, गो. ऑफ इंडिया, नई दिल्ली

हसन, ओया एंड नुसवॉम मारथा सी.एडी. (2011), *'इक्वालाइजिंग एक्सेस'* अफरमेटिव एक्सन इन इंडिया, युनाइटेड स्टेट्स एंड साउथ अफ्रीका, आक्सफोर्ड प्रेस, नई दिल्ली

जोधका, सुरिन्दर एस. कुमार अविनाश (2007), *इंटरनल क्लासिफिकेशन आफ शिड्यूल्ड कास्ट्स : दि पंजाब स्टोरी,* इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वाल्यूम-ग्स्प्, नं. 43

कुमार अविनाश (2009), *इलिजिटिमेसी आफ दि स्टेट इंड बिहार* इकोनोमिक एंड पालिटिक्स वीकली, वाल्यूम ग्स्प्ट नं. 44

कुमार, संजीव (2012) *को-एक्सिटेंस ऑफ महादलित्स : एन इन्क्लूसिव एजुकेशन पोलिसी पर्सपेक्टिव,* पी.यू. जरनल आफ एजुकेशन, पटना

मिनिस्ट्री आफ ह्यूमन रिसोर्स डवलपमेंट (2013), *आल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजूकेशन,* प्रोमिजनल, एम.एच.आर.डी.नई दिल्ली

राव, यागाती चिन्ना (2004), *डिवाइडिंग दलित्स : राइटिंग ऑन सब-कटेगराइजेशन ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट्स,* रावट पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

तिलक, जे.बी.जी. एडिट (2013), *हायर एजुकेशन इन इंडिया, इन सर्च आफ इक्वालिटी, क्वालिटी, एंड क्वालिटी,* ओरिएंट ब्लेक खान, नई दिल्ली।

तिलक, जे.बी.जी. एडिट (1979), *इन इक्वालिटी इन एजुकेशन इन इंडिया : इंडियन जरनल ऑफ इंडिस्ट्रियल रिलेशंस,* वाल्यूम-14, नं. 3

थोरार, एस (2009), *दलित्स इन इंडिया, सर्च फार कॉमन आइडेनटिटी,* सेज, नई दिल्ली

थोरार, एस. एंड कैथरिन एस. न्यूमन एडि. (2009), *ब्लॉक्ड वाय कास्ट्स : इकोनोमिक डिसक्रिमिनेशन को-सोशल एक्सक्लूजन इन मोडर्न इंडिया* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : नई दिल्ली

थोरार, एस. एंड पॉल अर्ट्वल (2007) *दि लिगेसी ऑफ सोसल एक्सक्लूजन : अ कोरेसपोन्डेन्स स्टडी आफ जॉब डिसक्रिमिनेशन इन इंडिया* इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली वाल्यूम 42, नं. 41

वानखेड़, जी.जी. (2006), *अफरमेटिव एक्सन एंड दि शिडूल्यड कास्ट्स : एक्सेस टू हायर एजुकेशन इन इंडिया इन अयून वाल्टर आर.* मरूवेराइट बोनर हामार्थ टेरानिसी राबर्ट दी एडिटेड (2006)

''हायर एजुकेशन हुड ग्लोबल सोसायटी : एचिविंग डायवर्सिटी, इक्विटी एंड एक्सेसंस'' अस्सेवयर

www.mahadalitmission.org

wwwbihargovt.in

सिन्हा, आर.एच, (1986) *एलिथनेशन अमंग शिड्यूल्ड कास्ट्स,* मानस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता को प्रभावित करने वाले कारक

मोनू सिंह गुर्जर*

'वैश्वीकरण के युग में शिक्षा के बदलते स्वरूप ने माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता को प्रभावित किया है। पूँजीवादी व्यवस्था ने जन चेतना के साथ-साथ माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सकारात्मक बदलाव किए। विगत एक दशक में माध्यमिक शिक्षा ने शिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता को कैसे प्रभावित किया, यह शोध इसी और ध्यान आकृष्ट कर रहा है।'

शिक्षा के क्षेत्र में विगत् एक दशक की अवधि में महत्त्वपूर्ण अनेक सकारात्मक बदलाव आए हैं। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RAMSA) जैसी महत्त्वपूर्ण अनेक परियोजनाओं के संचालन के तहत् अनेक महत्त्वपूर्ण नवाचार शिक्षा के क्षेत्र में हुए हैं तथा इन नवाचारों के सकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं जिसमें शिक्षा में पालकों की भागीदारी, शिक्षण संस्थाओं की भूमिका तथा समुदाय की सहभागिता सामने आयी है। शिक्षा में माध्यमिक शिक्षा के सभी घटकों को समावेशित किया गया है जो गुणवत्ता युक्त शिक्षा के लिए अति आवश्यक है। माध्यमिक शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था जन समुदाय की सहभागिता सुनिश्चित करने में विद्यालय विकास समिति एवं विद्यालय प्रबन्ध समिति होती है। इसमें जो उद्देश्य हैं वो इस प्रकार थे:

(i) प्रत्येक बालक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करना।

(ii) राज्य सरकार की जवाबदारी सुनिश्चित करना कि ग्राम पंचायत स्तर पर माध्यमिक विद्यालय की सुविधा हो और 3 किमी. की परिधि के भीतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा सुविधा मुहैया कराना।

*शोधार्थी, E-mail: meenanetj@gmail.com, Mob.: 9460720029

(iii) शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एवं जनसमुदाय की सहभागिता सुनिश्चित कराना।

(iv) बच्चों की शैक्षणिक स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि हेतु सामूहिक प्रयास करना।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RAMSA)

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में समस्त बच्चों को माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूर्ण करने का अधिकार प्रदान किया गया है जो इस प्रकार है–

(i) विद्यालय में प्रवेश लेने का अधिकार

(ii) भेदभाव के बिना शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार

(iii) शिक्षक से अच्छा व्यवहार पाने का अधिकार

(iv) गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार

शिक्षकों की व्यावसायिक क्षमताओं को उच्च प्रकार के प्रशिक्षण द्वारा विकसित करने एवं अन्य शैक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा यह प्रयास करेगें कि जिले में अनुकूल शैक्षिक वातावरण का निर्माण किया जाए। इसके मुख्य कार्य निम्न होगें:

- माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों का सेवापूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण।
- जिला स्तर के शिक्षा विभाग के अधिकारियों, विद्यालय विकास समितियों एवं ग्राम शिक्षा समितियों, जन प्रतिनिधियों एवं शैक्षिक क्रियाओं में कार्य करने के इच्छुक युवक एवं स्वयंसेवकों को प्रशिक्षण।
- शिक्षकों एवं अनुदेशकों के लिए शिक्षण प्रशिक्षण संसाधन जुटाना।
- शिक्षा विभाग के अधिकारियों को शैक्षिक तकनीकी एवं कंप्यूटर शिक्षा के क्षेत्र में लक्ष्य प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों में क्रियात्मक अनुसंधान एवं अनुप्रयोग करना।
- माध्यमिक शिक्षा सार्वजनिक की ओर अग्रसर होती है यहाँ पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की सुविधा आवश्यक है जिससे विद्यार्थियों को सही प्रयोगात्मक ज्ञान मिले।
- माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थियों के भविष्य के विकल्पों को निर्धारित करती है।

समस्या कथन

''माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता को प्रभावित करने वाले

कारकों का अध्ययन'' (राजस्थान राज्य के जयपुर और अजमेर संभाग के विशेष संदर्भ में)

शोध के उद्देश्य

- पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण शैली का अवलोकन कर छात्रों की सफलता से उसका संबंध स्थापित करना।
- पुरुष एवं महिला शिक्षकों की मानसिक योग्यता का मापन करना तथा उनकी शिक्षण दक्षता का संबंध ज्ञात करना।
- माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षा के प्रति अवधारणा का अध्ययन करना तथा उसका शिक्षण दक्षता से संबंध ज्ञात करना।
- माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षा के प्रति अभिरुचि का मापन कर शिक्षण दक्षता पर प्रभाव जानना।
- माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों के मध्य शिक्षण कौशल, अभिवृत्ति, मानसिक योग्यता के मध्य अन्तर जानना।
- माध्यमिक विद्यालय के पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण कौशल, शिक्षण अभिवृत्ति, शिक्षण अभिरुचि, मानसिक योग्यता के मध्य संबंध ज्ञात करना।

शोध की परिकल्पना

- माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति में अन्तर नहीं होता है।
- माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि में अन्तर नहीं होता।
- माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की मानसिक योग्यता में अन्तर नहीं होता।
- माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रमीण शिक्षकों के व्यावसायिक कौशल में अन्तर नहीं होता।
- माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की शैक्षणिक उपलब्धि में अन्तर नहीं होता।

अध्ययन विधि एवं न्यादर्श

शोध कार्य हेतु राजस्थान राज्य के जयपुर और अजमेर संभाग का चयन किया गया।

इस शोध कार्य में न्यादर्श का चयन जयपुर और अजमेर संभाग के जिलों में से यादृच्छिक पद्धत्ति द्वारा जयपुर संभाग के चार जिलों– दौसा, जयपुर, अलवर, सीकर का चयन किया गया। ठीक इसी प्रकार अजमेर संभाग में भी चार जिलों– टोंक, अजमेर, भीलवाड़ा, नागौर का चयन किया गया। जयपुर और अजमेर संभाग के चयनित जिलों के कुल ग्रामीण शिक्षकों में से यादृच्छिक विधि से पुरुष एवं महिला शिक्षकों का समान संख्या में चयन किया गया। जयपुर और अजमेर संभाग से कुल 250–250 शिक्षकों का चयन किया। इस तरह कुल 500 माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया। सामग्री के संकलन हेतु शोधकर्त्ता द्वारा निरीक्षण पद्धत्ति का उपयोग किया गया।

प्रयुक्त सांख्यिकी

अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य न्यादर्श के शिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना है तथा इन कारकों के अन्तर के लिए उत्तरदायी चरों पर शोध करना है। चरों के आधार पर उन्हें अलग–अलग वर्गीकृत करके इनके मध्यमान एवं प्रामाणिक विचलन ज्ञात कर अन्तर की सार्थकता की जाँच (t-test) टी–परीक्षण द्वारा टी के मान से एवं एनोवा परीक्षण द्वारा, एफ के मान के अनुसार की गई। परीक्षा का आधार पी 0.05 और 0.01 निर्धारित किया गया। तत्पश्चात् प्रत्येक परिकल्पना का विश्लेषण एवं व्याख्या कर निष्कर्ष निकाला गया एवं प्रतिवेदन तैयार किया गया।

प्राप्त परिणाम

परिकल्पनाओं की जाँच, परिणामों का विश्लेषण एवं व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है – परिकल्पना के परीक्षण हेतु माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों का शैक्षिक अभिवृत्ति का मान निम्न तालिका में दर्शाया गया है–

तालिका–1

शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति में अन्तर

स्रोत	मुक्तांश (df)	वर्गों का योग (SS)	माध्य वर्ग का योग (ms)	अनुपात (f)	सार्थक (.01)
समूह के (मध्य)	1	2398.05	2398.05	1.172	सार्थक
समूह के (अन्दर)	498	1018590.9	2045.36		

df=498*P<0.5*P<0.01

तालिका–1 से स्पष्ट है कि 0.01 स्तर पर f का मूल्य 1.172 है जो सार्थक नहीं है। अत: परिकल्पना स्वीकार की जाती है कि माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति व्यवसाय के प्रति समान सोच है।

परिकल्पना के परीक्षण हेतु माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों को शैक्षिक अभिरुचि का एफ मान निम्न तालिका–2 में दर्शाया गया है–

तालिका–2

शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की अभिरुचि में अन्तर

स्रोत	मुक्तांश (df)	वर्गों का योग (SS)	माध्य वर्ग का योग (ms)	अनुपात (f)	सार्थक (.01)
समूह के (मध्य)	1	1972.09	1972.09	5.906	सार्थक
समूह के (अन्दर)	498	166287.30	333.91		

df = 498*P<0.05*P<0.01

तालिका–2 से स्पष्ट है कि 0.01 स्तर पर f का मूल्य 5.906 है जो सार्थक नहीं है। अत: परिकल्पना स्वीकार की जाती है, परिकल्पना सत्य है अर्थात सार्थक है कि माध्यमिक स्तर पर शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि में अन्तर नहीं होता। ऐसा होने के कारण शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की शिक्षण में समान रुचि होती है।

परिकल्पना के परीक्षण हेतु माध्यमिक स्तर पर शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की मानसिक योग्यता का एफ मान निम्न तालिका–3 में दर्शाया गया है–

तालिका–3

शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की मानसिक योग्यता में अन्तर

स्रोत	मुक्तांश (df)	वर्गों का योग (SS)	माध्य वर्ग का योग (ms)	अनुपात (f)	सार्थक (.01)
समूह के (मध्य)	1	1703.85	1703.85	5.538	सार्थक
समूह के (अन्दर)	499	153229.04	307.68		

df=498*P<0.05*P<0.01

तालिका-3 से स्पष्ट है कि 0.01 स्तर पर f का मूल्य 5.538 है, जो कि सार्थक नहीं है। अत: परिकल्पना स्वीकार की जाती है, अर्थात सार्थक है कि माध्यमिक स्तर पर शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की मानसिक योग्यता में अन्तर नहीं होता। ऐसा होने के कारण शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की शिक्षा के महत्त्व को समान समझना है।

परिकल्पना के परीक्षण हेतु माध्यमिक स्तर पर शहरी और ग्रामीण शिक्षकों का व्यावसायिक कौशल का एफ मान तालिका-4 में दर्शाया गया है-

तालिका-4

शहरी और ग्रामीण शिक्षकों के व्यावसायिक कौशलों में अन्तर

स्रोत	मुक्तांश (df)	वर्गों का योग (SS)	माध्य वर्ग का योग (ms)	अनुपात (f)	सार्थक (.01)
समूह के (मध्य)	1	470.45	470.45	0.735	सार्थक
समूह के (अन्दर)	499	318948.05	640.45		

df=498*P<0.05*P<0.01

तालिका-4 से स्पष्ट है कि 0.01 स्तर पर f का मूल्य 0.735 है जो सार्थक नहीं है। अत: परिकल्पना स्वीकार की जाती है, परिकल्पना सत्य है अर्थात सार्थक है कि माध्यमिक स्तर पर शहरी और ग्रामीण शिक्षकों के व्यावसायिक कौशल में अन्तर नहीं होता। ऐसा होने के कारण शहरी और ग्रामीण शिक्षकों को एक ही स्थान पर समान एवं एक साथ प्रशिक्षण देना है।

परिकल्पना के परीक्षण हेतु माध्यमिक स्तर पर शहरी और ग्रामीण शिक्षकों का शैक्षणिक उपलब्धि का f मान निम्न तालिका-5 में दर्शाया गया है-

तालिका-5

शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की उपलब्धि में अन्तर

स्त्रोत	मुक्तांश (df)	वर्गों का योग (SS)	माध्य वर्ग का योग (ms)	अनुपात (f)	सार्थक (.01)
समूह के (मध्य)	1	.578	.578	0.094	सार्थक
समूह के (अन्दर)	499	3070.40	6.162		

df=498*P<0.05*P<0.01

तालिका–5 से स्पष्ट है कि 0.01 स्तर पर f का मूल्य 0.094 है जो सार्थक नहीं है। अत: परिकल्पना स्वीकार की जाती है, परिकल्पना सत्य है अर्थात सार्थक है कि माध्यमिक स्तर पर शहरी और ग्रामीण शिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि में अन्तर नहीं होता।

शोध निष्कर्ष

माध्यमिक स्तर पर पुरुष और महिला शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति, अभिरुचि, मानसिक योग्यता, व्यावसायिक कौशल, शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर नहीं होता। ऐसा होने का कारण पुरुष और महिला शिक्षकों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति समान सोच एवं समान रुचि का होना है। एक साथ शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त करने के कारण व्यावसायिक कौशल में भी अन्तर नहीं पाया गया साथ ही शिक्षा के महत्त्व की समान उपयोगिता के कारण व्यक्तिगत शैक्षिक उपलब्धि में भी अन्तर नहीं पाया गया। अत: मानसिक योग्यता में भी अन्तर नहीं पाया गया।

माध्यमिक स्तर पर शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति, अभिरुचि, मानसिक योग्यता, व्यावसायिक कौशल, शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर नहीं होता। ऐसा होने का कारण शहरी और ग्रामीण शिक्षकों का शिक्षण व्यवसाय को एक समान कारण से अपनाना एवं शिक्षण व्यवसाय में समान रुचि का होना है। साथ ही उनकी समान शैक्षिक उपलब्धि के कारण मानसिक योग्यता में भी अन्तर नहीं पाया गया।

शोध की शैक्षिक उपयोगिता

(i) शिक्षण अभिवृत्ति एवं शिक्षण कौशल में धनात्मक सह–संबंध होता है। अत: उच्च स्तरीय शिक्षण कौशल शिक्षक के सांमजस्यीकरण पर आधारित है।

(ii) शिक्षक की सभी दक्षताओं में सकारात्मक सह–संबंध होता है।

(iii) सभी दक्षताओं का शिक्षक उपलब्धि के साथ सकारात्मक संबंध होता है।

(iv) सभी शिक्षकों का स्तर उनकी शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति की दक्षताओं को प्रभावित करता है।

(v) उच्च स्तरीय योग्यता शिक्षण दक्षता बढ़ाने में सहायक होती है।

(vi) शिक्षण दक्षता बढ़ाने वाले कारक के रूप में अभिरुचि होना आवश्यक है।

(vii) शिक्षक में सफलता प्राप्ति के लिए बुद्धि उपलब्धि, अभिवृत्ति, अभिरुचि के मध्य संबंध सकारात्मक होता है।

(viii) शिक्षण सफलता, बुद्धि शिक्षण के प्रति अभिरुचि, शिक्षण अभिवृत्ति आदि चरों का लैंगिक भेद का प्रभाव नहीं पड़ता है।

इस प्रकार शैक्षिक उपयोगिता कक्षा शिक्षण में विद्यालय, शिक्षक और छात्र के लिए उपयोगी होगी जिससे कक्षा शिक्षण प्रभावी एवं छात्र का अधिगम स्तर उच्च होगा।

संदर्भ

पंडा, बी.एन. तिवारी ए.डी. (1997), '*शिक्षक शिक्षा*' ए.पी.एच. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली

शर्मा, आर.ए. – *शिक्षा अनुसंधान,* लाल बुक डिपो, मेरठ

गुप्ता, एस.पी. (2001), *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

श्रीमती सुखिया, एस.पी. (2000), *विद्यालय प्रशासन एवं संगठन,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

शर्मा, डी.आर.ए. (2002), *शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबंधन,* सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ

पाण्डेय, के.पी. (2006), *शैक्षिक अनुसंधान,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

प्रसाद, केवल (2000), *विद्यालय व्यवस्था,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

सिंह, यू. (1980), द *इम्पैक्ट ऑफ टीचर एजुकेशन प्रोग्राम ऑन द प्रोफेशनल इफिशियन्सी ऑफ द टीचर्स इन बुच* (एड) *थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन,* नई दिल्ली, नेशनल काउन्सिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग

कौल, लोकेश (1984), '*मैथेडोलॉजी ऑफ एजुकेशनल रिसर्च,* विकास पब्लिसिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

शोध टिप्पणी/संवाद

बाल-श्रमिकों की शैक्षिक समस्याएं
सीतापुर जनपद के बाल-श्रमिकों का केस अध्ययन

मधु माथुर* एवं **आफताब जाक़रा सिद्दीकी****

मानव जगत में उत्साह, उमंगों एवं सपनों का सर्वोत्कृष्ट जीवित पुंज 'बालक' को माना गया है। सच तो यह है कि बालक की नहीं, देश व राष्ट्र की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व और मानवता की अमूल्य निधि है। अंग्रेजी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि विलियम वर्ड्स ने कहा था कि बालक ही मनुष्य का पिता होता है। किसी भी देश के बालकों की अच्छी अथवा बुरी दशा ही यहाँ के सांस्कृतिक स्तर का सबसे विश्वसनीय मापदंड होता है। आदि काल से बच्चों का पालन-पोषण एक विशेष और महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व रहा है। इस संदर्भ में उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि में परिवार की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मनुष्य के जीवन में बाल्यावस्था एक ऐसी स्थिति है जिसमें उसको सबसे अधिक सहायता, देखभाल, प्रेम, सहानुभूति और सुरक्षा की आवश्यकता होती है। जिन व्यक्तियों का बाल जीवन सुखी, संतुष्ट और सन्तुलित होता है और वे एक विकासशील, सशक्त और उन्नत समाज की संचरना में रचनात्मक सहयोग देते हैं। किन्तु, विडम्बना इस बात की है कि इन बच्चों की एक बड़ी संख्या ऐसे बच्चों की है, जिनका जीवन संघर्ष एवं असामान्य परिस्थिति में बीतता है।

प्रश्न यह है कि जिन बच्चों का बचपन ही समस्याओं से घिरा हुआ है उन बच्चों का भविष्य क्या होगा ? क्या ये बच्चे बड़े होकर पढ़ेंगे या बाल-श्रमिक बनेंगे। वे समाज और राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान किस प्रकार दे सकेंगे।

आज भी परिवार की आर्थिक विवशताओं के कारण हजारों बच्चे स्कूल की चौखट भी पार नहीं कर पाते और अनेकानेक बालकों को इन्हीं बाध्याताओं के कारण पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ती है और बाल-श्रमिक आजीविका, शिक्षा, प्रशिक्षण

*डीन, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर, राजस्थान
**शोध छात्रा, वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर, राजस्थान

और कार्यरत कौशल से वंचित रह जाते हैं। परिणामत: न ही उनका मानसिक विकास हो पाता है और न ही बौद्धिक विकास सम्भव है।

बालश्रम की समस्या हर युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान्य रही है। बालश्रम का मसला विश्व एजेंडे में सबसे ऊपर होना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है। दुनिया के हर देश में समृद्ध घरों में एक अदद घरेलू नौकर होता है। आई.एल.ओ. का अनुमान है कि 10 मिलियन बच्चे घरेलू नौकर के रूप में लगे हुए हैं।

बालश्रम के प्रमुख कारणों में से है–माता–पिता की निर्धनता, निरक्षरता, अज्ञानता, अत्यधिक प्रजनन–दर, जनसंख्या विस्फोट समाज और सरकार की अकर्मण्यता। संविधान की धारा 45 के अन्तर्गत 6–14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। शिक्षा का यह लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जब शिक्षा सार्वभौमिक हो किन्तु यह कैसी विडम्बना है कि स्वतंत्रता के छ: दशक बीत जाने के बाद भी अनिवार्य शिक्षा के उस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पा रहे। सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई प्रकार की योजनाएँ जैसे– माध्याह्न भोजन 1995 (पोषाहार, वितरण, भोजन) स्कूल चलो अभियान योजना 1996, सर्व शिक्षा अभियान 2000 इत्यादि लागू की हैं। ये सभी योजनाएँ भी देश के बच्चों को पूर्ण रूप से शिक्षित नहीं कर पा रही हैं। अधिकांश बच्चों की संख्या ऐसी है जिनका जीवन घोर संघर्ष एवं असामान्य परिस्थिति में बीतता है। जिन बच्चों का जीवन समस्याओं से घिरा हुआ है वे बच्चे स्कूल की चौखट को भी पार नहीं कर पाते हैं और अनेकानेक बालकों को इन्हीं बाध्यताओं के कारण पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ती है। उनके हाथों में कलम व किताबों के स्थान पर हंसिया, फावड़ा और श्रम के निशान ही सदैव दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार बाल मजदूरी सम्पूर्ण समाज के लिए कलंक बन चुकी है।

चौदह वर्ष से कम आयु में अर्थोपार्जन हेतु किया गया श्रम बालश्रम की श्रेणी के अन्तर्गत आता है। ये सभी बाल–श्रमिक कहलाते हैं।

अध्ययन की आवश्यकता

बाल–श्रमिकों की शिक्षा संबंधी समस्याओं का एक पहलू यह भी था कि 50 प्रतिशत से अधिक प्राइमरी स्कूल शिक्षा के दौरान ही स्कूल छोड़ देते हैं और इस प्रकार ड्राप–आऊट हो जाते हैं। निम्नांकित अध्ययन इसकी पुष्टि करते हैं। बनारस (जुयाल 1985) जम्मू एण्ड कश्मीर (किचलू 1987) कलकत्ता (घोष 1984), मुम्बई (मुसाफिर सिंह 1980), दिल्ली (बरुआ 1977), बंगलौर (पाटिल 1988), अहमदाबाद (सिंह 1922)। इमेनुल 1996 व सूर्या मूर्ति 1988 के केरल के अध्ययन से यह तथ्य सामने

आया कि 90 प्रतिशत कामकाजी बच्चे निरक्षर थे।

शर्मा, निर्मला (1992) ''अ स्टडी आफ द प्राब्लम ऑफ नान एनरोलमेंट एण्ड नॉन रिटेन्शन ऑफ द चिल्ड्रेन आँफ द मार्डन लेबर विद स्पेशल रैफरेंस टू द डिस्ट्रिक्ट ऑफ शिव सागर''– शिवसागर के टी गार्डन में जितने बाल मजदूर लगे हुए थे उनमें से 90 प्रतिशत अशिक्षित थे। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य अशिक्षित होने का कारण जानना और अभिभावकों द्वारा बच्चों के लिए नौकरी चयन में इच्छा का पता लगाना आदि था। अध्ययन के दौरान पाया गया कि शिक्षा की दर कम होने का प्रमुख कारण बच्चों की घरेलू व अघरेलू कार्यों में व्यस्तता, गरीबी, घर का वातावरण और अभिभावकों की शिक्षा के प्रति नीरसता आदि था।

श्री निवासन कर्ण एवं गंडोतरा बीना (1993) द्वारा ''चाइल्ड लेबर मल्टीडाइमेन्शनल प्राब्लम''– शीर्षक अध्ययन में ग्रामीण व शहरी बाल श्रमिकों पर किये गए अनेक शोधों का अध्ययन किया गया। अध्ययन के बाद पाया गया कि बालश्रम का प्रमुख कारण बाल श्रमिकों की खराब आर्थिक स्थिति और उनका सामाजिक पिछड़ापन था। उनमें शिक्षा का अभाव था।

खाटू के.के. (1993)– ''वर्किंग चिल्ड्रेन इन इण्डिया''– इस अध्ययन में बालश्रम के कारणों का अध्ययन किया गया जिसमें निर्धनता, शोषण और उत्पीड़न को बालश्रम का कारण माना गया। विषम परिस्थितियों में इन बच्चों के माता-पिता ही उनसे जोखिम भरे कार्य करवाने के लिए बाध्य हैं।

शाहू, यू.जी. (1995)–''चाइल्ड लेबर इन अग्रेरियन सोसाइटी''– में कृषि में संलग्न बाल श्रमिकों का अध्ययन किया गया है। इस शोध से स्पष्ट है कि कृषि क्षेत्र में महिला बाल श्रमिक बहुत कम वेतन पर उपलब्ध हैं। अशिक्षित होने के कारण ये नये रोजगारों से पूर्णतया: अनभिज्ञ हैं। यही कारण है कि वे मानसिक श्रम की अपेक्षा शारीरीक श्रम को अधिक महत्व दे रही हैं।

फाइफ (1999) ने कहा कि अशिक्षा बालश्रम का एक प्रमुख कारक है परन्तु शिक्षा प्रणाली में आए दोषों को दूर किये बिना सबको शिक्षा देने का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। प्राथमिक एंव माध्यमिक शिक्षा पर सभी सरकारों को अधिक धन खर्च करना ही होगा।

समस्या– ''सीतापुर जनपद के बाल श्रमिकों की शैक्षिक समस्याओं का एक अध्ययन''

उद्देश्य

(i) बाल श्रमिकों की शैक्षिक समस्याओं के संदर्भ में अध्ययन करना।

(ii) बाल श्रमिकों की शिक्षा से सम्बंधित माता-पिता की समस्याओं का अध्ययन।
(iii) बाल श्रमिकों के लिए सरकारी प्रयासों का अध्ययन करना।

परिकल्पना

(i) बाल श्रमिकों की शैक्षिक समस्याओं के संदर्भ में भिन्नता होगी।
(ii) बाल श्रमिकों की शिक्षा से संबंधित माता-पिता की समस्याओं में भिन्नता होगी।
(iii) बाल श्रमिकों के लिए सरकारी प्रयास किये जा रहे हैं।

न्यादर्श-

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु सीतापुर जनपद के 600 बाल श्रमिकों का चयन किया गया।

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन से संबंधित आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए स्वनिर्मित, साक्षात्कार, प्रत्यक्षीकरण मापनी विधि का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय विधि

आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिए प्रतिशत की गणना की गयी है और उनकी विस्तृत व्याख्या भी की गयी है।

बाल श्रमिकों की शैक्षिक स्थिति का विवरण

आधुनिक समाज में व्यक्ति की सामान्य जागरूकता तथा ज्ञान को बढ़ाने की औपचारिकता में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। बालश्रमिकों का शिक्षा के प्रति रुचि है और कितने प्रतिशत बाल श्रमिक शिक्षित हैं या अशिक्षित, इन्ही बातों के साथ-साथ बाल श्रमिकों के लिंग व आयु जानने का प्रयास किया गया है। बाल श्रमिकों की शैक्षिक स्थिति का विवरण निम्न तालिकाओं में दर्शाया गया है, जो इस प्रकार है–

तालिका-1

लैंगिक आधार पर बाल श्रमिकों का विवरण

क्र.सं.	लिंग	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1	बालक	324	54
2	बालिका	276	46
	योग	**600**	**100**

तालिका-1 से स्पष्ट होता है कि अधिकांश बाल श्रमिक बालक हैं जो संख्या में अधिक है, जिनका प्रतिशत 54 है जबकि बालिकाओं का 46% है।

तालिका-2

आयु के आधार पर बाल श्रमिकों का विवरण

क्र.सं.	आयु स्तर	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1	0-5	30	5
2	6-10	210	35
3	11-14	360	60
	योग	**600**	**100**

तालिका-2 से स्पष्ट होता है कि अध्ययन के अन्तर्गत लिये गए 600 बाल श्रमिकों में से सर्वाधिक बाल श्रमिक (11-14) वर्ष आयु समूह के 60% एवं 35% बाल श्रमिक (6-10) वर्ष आयु तक के हैं, जबकि (0-5) वर्ष आयु समूह के 10% बाल श्रमिक अध्ययन में पाये गये हैं।

तालिका-3

शैक्षिक स्तर का विवरण

क्र.सं.	शैक्षिक स्तर	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1	अनपढ़	360	60
2	दूसरी कक्षा	120	20
3	चौथी कक्षा	90	15
4	छठी कक्षा	30	5
	योग	**600**	**100**

तालिका-3 से स्पष्ट है कि कुल साक्षरता बाल श्रमिकों में 40% है जिसमें से 20% बाल श्रमिक केवल दूसरी कक्षा तक पढ़े हुए हैं। शेष 15% चौथी कक्षा व 5% छठी कक्षा तक के हैं, जबकि 60% बाल श्रमिक अनपढ़ हैं।

तालिका-4

शिक्षा के प्रति रुचि संबंधी विवरण

क्र.सं.	शिक्षा के प्रति रुचि	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1.	रुचि है	258	43
2.	रुचि नहीं है	342	57
	योग	**600**	**100**

तालिका–4 से पता चलता है कि 43% बाल श्रमिक शिक्षा के प्रति रुचि रखते हैं जबकि 57% बाल श्रमिक शिक्षा के प्रति रुचि नहीं रखते हैं।

तालिका–5

सप्ताह में विद्यालय कितने दिन जाते हैं का विवरण

क्र.सं.	दिन	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1.	प्रतिदिन	90	15
2.	2 दिन	306	51
3.	4 दिन	204	34
	योग	**600**	**100**

तालिका–5 से यह पता चलता है कि 15% बच्चे प्रतिदिन स्कूल जाते हैं व 51% बच्चे सप्ताह में केवल 2 दिन स्कूल जाते है और 34% बाल श्रमिक 4 दिन स्कूल जाते हैं।

तालिका–6

परीक्षा में पास हो जाते हैं।

क्र.सं.	पास हो जाते हैं	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1.	हाँ	204	34
2.	नहीं	396	64
	योग	**600**	**100**

तालिका–6 से यह पता चलता है कि 34% बाल श्रमिक परीक्षा में पास हो जाते हैं जबकि 64% परीक्षा में पास नहीं हो पाते हैं।

तालिका–7

भविष्य में स्कूल जायेंगे

क्र.सं.	भविष्य में स्कूल जायेंगे	बाल श्रमिकों की संख्या संख्या	बाल श्रमिकों का %
1.	हाँ	255	42.5
2.	नहीं	345	57.5
	योग	**600**	**100**

तालिका-7 से यह पता चलता है कि 42.5% बाल श्रमिक भविष्य में स्कूल जायेंगे जबकि 57.5% बाल श्रमिक भविष्य में स्कूल नहीं जायेगें।

तालिका-8

अन्य बच्चों के साथ मित्रता का संबंध है

क्र.सं.	अन्य बच्चों के साथ मित्रता	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1.	हाँ	204	34
2.	नहीं	396	66
	योग	**600**	**100**

तालिका-8 से यह पता चलता है कि केवल 34% बाल श्रमिक का कहना है कि अन्य बच्चों के साथ मित्रता का संबंध है जबकि 66% बाल श्रमिक का कोई मित्रता का संबंध नहीं है।

तालिका-9

शिक्षक आप लोगों का सहयोग करते हैं

क्र.सं.	शिक्षकों का सहयोग	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1.	हाँ	216	36
2.	नहीं	384	64
	योग	**600**	**100**

तालिका-9 से यह पता चलता है कि 36% बाल श्रमिक का कहना है कि शिक्षक सहयोग करते हैं जबकि 64% बाल श्रमिकों का कहना है कि शिक्षक उनका सहयोग नहीं करते हैं।

तालिका-10

निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था है

क्र.सं.	शिक्षा की व्यवस्था	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1.	हाँ	264	44
2.	नहीं	336	56
	योग	**600**	**100**

तालिका-10 से यह पता चलता है कि 44% बाल श्रमिकों का कहना है कि उनके विद्यालय में नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था है जबकि 56% बाल श्रमिकों का कहना है कि ऐसा कुछ भी नहीं है।

तालिका-11

स्कूल में मध्याह्न भोजन की व्यवस्था है

क्र.सं.	भोजन की व्यवस्था	बाल श्रमिकों की संख्या	बाल श्रमिकों का %
1.	हाँ	255	42.5
2.	नहीं	345	57.5
	योग	**600**	**100**

तालिका-11 से यह पता चलता है कि 42.5% बाल श्रमिकों का कहना है कि उनके स्कूल में मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था है जबकि 57.5% बाल श्रमिकों का कहना है कि ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

बाल श्रमिकों की शिक्षा से संबंधित माता-पिता के विचार

बाल श्रमिकों के माता-पिता से यह जानने का प्रयास किया गया है कि वह अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति किस प्रकार की भूमिका निभा रहे हैं। इसका विवरण निम्न तालिकाओं में दर्शाया गया है–

तालिका-12

आप शिक्षित है

क्रम संख्या	शिक्षित हैं	बाल श्रमिकों के माता-पिता की संख्या	बाल श्रमिकों का (%)
1.	हाँ	120	20
2.	नहीं	480	80
	योग	**600**	**100**

तालिका-12 से यह पता चलता है कि 20% बाल श्रमिकों के माता-पिता शिक्षित है जबकि 80% बाल श्रमिकों के माता-पिता अशिक्षित हैं।

तालिका-13

बच्चों की पढ़ाई के प्रति जागरूक हैं

क्रम संख्या	जागरूक हैं	बाल श्रमिकों के माता-पिता की संख्या	बाल श्रमिकों का (%)
1.	हाँ	276	46
2.	नहीं	324	54
	योग	**600**	**100**

तालिका-13 से यह पता चलता है कि 54% बाल श्रमिकों के माता-पिता शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं हैं जबकि 46% बाल श्रमिकों के माता-पिता जागरूक हैं।

तालिका-14

(5-14) वर्ष तक बच्चों को स्कूल भेजना

क्रम संख्या	स्कूल भेजना	बाल श्रमिकों के माता-पिता की संख्या	बाल श्रमिकों का (%)
1.	हाँ	270	45
2.	नहीं	330	55
	योग	**600**	**100**

तालिका-14 से स्पष्ट होता है कि 45% बाल श्रमिकों के माता-पिता का कहना है कि (5-14) वर्ष तक के बच्चों को स्कूल भेजते हैं जबकि 55% बाल श्रमिकों के माता-पिता का कहना है कि स्कूल भेजेगें तो काम कौन करेगा।

तालिका-15

बच्चों को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व माता-पिता का है।

क्रम संख्या	उत्तरदायित्व है	बाल श्रमिकों के माता-पिता की संख्या	बाल श्रमिकों का (%)
1.	नहीं निभाते हैं	339	56.5
2.	निभाते है।	261	43.5
	योग	**600**	**100**

तालिका-15 से स्पष्ट होता है कि 56.5% बाल श्रमिकों के माता-पिता की राय है कि बच्चों का शिक्षित करनें का उत्तरदायित्व नहीं निभाते है जबकि 43.5% बाल श्रमिकों

के माता-पिता बच्चों को शिक्षित करनें का उत्तरदायित्व निभाते है।

तालिका-16

नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो तो स्कूल भेजेगें।

क्रम संख्या	स्कूल भेजेंगे	बाल श्रमिकों के माता-पिता की संख्या	बाल श्रमिकों का (%)
1.	भेजेगें	285	47.5
2.	नहीं भेजेगें	315	52.5
	योग	**600**	**100**

तालिका-16 से स्पष्ट होता है कि 47.5% बाल श्रमिकों के माता-पिता का कहना है कि नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो तो हम स्कूल भेजेगें जबकि 52.5% बाल श्रमिको के माता-पिता कभी स्कूल नहीं भेजेगें।

तालिका-17

माता-पिता को बाल उन्मूलन की जानकारी का विवरण

क्रम संख्या	बाल उन्मूलन की जानकारी	बाल श्रमिकों के माता-पिता की संख्या	बाल श्रमिकों का (%)
1.	जानकारी है।	198	33
2.	जानकारी नहीं है।	402	67
	योग	**600**	**100**

तालिका-17 से स्पष्ट होता है कि 33% बाल श्रमिकों के माता-पिता को बाल उन्मूलन की जानकारी है लेकिन 67% बाल श्रमिकों के माता-पिता को बाल उन्मूलन की जानकारी नहीं है।

तालिका-18

बच्चों से श्रम करवाना सरकार द्वारा प्रतिबंध का विवरण

क्रम संख्या	सरकार द्वारा प्रतिबंध	बाल श्रमिकों के माता-पिता की संख्या	बाल श्रमिकों का (%)
1.	हाँ	180	30
2.	नहीं	420	70
	योग	**600**	**100**

तालिका-18 से स्पष्ट होता है कि 30% बाल श्रमिकों के माता-पिता को इस बात की जानकारी है कि बच्चों से श्रम करवाना सरकार द्वारा प्रतिबंध है जबकि 70% बाल-श्रमिकों के माता-पिता को नहीं पता है।

तालिका-19

माता-पिता बच्चों के भविष्य के बारे में सोचते हैं का विवरण

क्रम संख्या	भविष्य के बारे में सोचना	बाल श्रमिकों के माता-पिता की संख्या	बाल श्रमिकों का (%)
1.	हाँ	246	41
2.	नहीं	354	59
	योग	**600**	**100**

तालिका-19 से स्पष्ट होता है कि 41% बाल श्रमिकों के माता-पिता अपने बच्चों के भविष्य के बारे में सोचते है जबकि 59% बाल श्रमिक के माता-पिता ऐसा नहीं सोचते हैं।

शैक्षिक निहितार्थ/शैक्षिक फलार्थ

प्रस्तुत शोध में प्राप्त परिणामों से सभी को शिक्षा देने के अभियान में उपयोग में लाया जा सकता है। 5-14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य शिक्षा देने के लिए सरकार को प्राथमिक शिक्षा पर अधिक खर्च करना होगा। अत्यन्त गरीब परिवारों के बच्चों को मुफ्त आवास, भोजन, शिक्षा, चिकित्सा के साथ-साथ 100 रुपये प्रतिमाह का वजीफा भी देना सर्वथा उचित होगा। जिससे इन गरीब परिवार के बाल श्रमिकों की आय की अंशत: प्रतिपूर्ति की जा सके।

सुधार हेतु सुझाव

स्कूलों के पाठ्यक्रमों में बाल श्रम उन्मूलन संबंधी अध्याय को शामिल किया जाना चाहिए। बाल श्रम उन्मूलन के लिए 10वीं योजना में राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अन्तर्गत कवर किये गए जिलों की संख्या 100 से बढ़कर 250 हो गयी है। दोपहर का भोजन कार्यक्रम (मिड-डे-मील) से मिलने वाली खाद्य सुरक्षा का बाल श्रमिकों की संख्या को कम करने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

सभी बालकों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा दी जाए तथा रोजगार हेतु प्रशिक्षण दिया जाये जिससे वे अपनी जीविका कमा सके।

बाल श्रमिक संबंधी प्रमुख अधिनियम

इनके अलावा बाल श्रमिक सम्बन्धी अधिनियम इस प्रकार है–

1.	संविधान का अनुच्छेद–24	14 वर्ष की आयु से कम के बच्चे को किसी भी कारखाने, खान या अन्य खतरनाक व्यवसाय में लगाने पर प्रतिबन्ध।
2.	संविधान का अनुच्छेद–39(ङ)	सरकार द्वारा अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करना कि सुनिश्चित रूप से बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से मजबूर होकर उन्हें ऐसे रोजगार में न जाना पड़े जो उनकी आयु और शक्ति के अनुकूल न हों।
3.	संविधान का अनुच्छेद–45	14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को सरकार द्वारा निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित किया जाना।
4.	संरक्षक एवं परिपाल्य अधिनियम–1890	न्यायालय की संस्तुति पर अवयस्क के हित को ध्यान में रखते हुए उसकी या उसकी सम्पत्ति अथवा दोनों के बारे में संरक्षक नियुक्त करने की व्यवस्था।
5.	राष्ट्रीय बाल आयोग (प्रस्तावित)	बच्चों के विकास और उनसे संबंधित समस्याओं के सभी पहलुओं का अध्ययन और समस्याओं के निराकरण के लिए आवश्यक कदम उठाना।

संदर्भ

http://www.childinfo.org
http://www.workingchild.org
http://www.laborsta.ilo.org

खाता, के.के. (1993) '*वर्किंग चिल्ड्रन इन इंडिया*; बड़ौदा, पृष्ठ–40

श्री मयंक (2010) *बाल श्रमः एक सामाजिक अभिशाप*, प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, पृष्ठ सं. 504–507.

सिंह, जनमेजय व सिंह, वी.एन. (2008) *भारतीय सामाजिक अधिनियम एवं समाज कल्याण,* ज्ञानोदय प्रकाशन, कानपुर पृष्ठ सं. 41–52.

शर्मा, ऊषा (2006) *चाईल्ड केयन इन इण्डिया*, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2014

चिंतक और चिंतन

एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीन दयाल उपाध्याय का शिक्षा दर्शन

दामोदर जैन*

प्रस्तावना

प्रख्यात भारतीय विचार एवं आचार्यत्रय – शुक्र, बृहस्पति एवं चाणक्य के वैचारिक धरातल पर आधुनिक राजनीति को शुचिता एवं शुद्धता प्रदान करने वाले, नि:स्वार्थ व एक निष्ठाभाव से राष्ट्र को समर्पित पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्मना नही कर्मणा महान थे। वे ही युगपुरुष होते हैं जिन्हें अपने समर्थकों और विरोधियों, दोनों की श्रद्धा मिलती है। तत्कालीन केन्दीय गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण ने पंडित दीनदयाल जी को 'महान भारतीय' तथा साम्यवादी नेता हीरेन मुखर्जी ने उन्हें 'अजात शत्रु' के रूप में श्रद्धांजलि अर्पित की थी। भारत केसरी श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने तो उनकी प्रतिभा और कार्यकुशलता से प्रभावित होकर कहा था कि ''यदि मुझे दो और दीनदयाल मिल जाए तो मैं शीघ्रातिशीघ्र भारत की राजनीति का चित्र ही बदल दूँगा।''

भारतीय राजनीति में अपने विशिष्ट चिंतन और दर्शन के लिए जिन राजनेताओं को जाना जाता है उनमें तीन नाम महत्वपूर्ण हैं। महात्मा गांधी, राम मनोहर लोहिया और पं. दीनदयाल उपाध्याय। गांधी जी के दर्शन का मूल आधार सत्य, अहिंसा और विश्वास था। राम मनोहर लोहिया मूलत: राजनीतिक विचारक, चिंतक और दृष्टा थे लेकिन उनका चिंतन राजनीति तक ही सीमित नहीं था वे देशकाल की सीमाओं में कभी नहीं बंधे और इसीलिए उन्होंने विश्व नागरिकता की कल्पना की थी। लोहिया जी गाँधी जी के सत्याग्रह और अहिंसा के विरोधी नहीं थे लेकिन वे गांधीवाद को पूर्ण दर्शन भी नहीं मानते थे। उनका मानना था कि पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों की बुराइयों से समाजवाद ही निजात दिला सकता है। ऐसा समाजवाद जिसकी बुनियाद प्रजातंत्र हो। लोहिया जी प्राचीन भारत के सत्यं, शिवं, सुंदरम् के आदर्श समाजवाद, स्वातंत्र्य और अहिंसा के

*व्याख्याता, प्रगत शैक्षिक अध्ययन संस्थान, बैरसिया रोड, भोपाल (म.प्र.)

आधुनिक आदर्श के बीच व्यावहारिक समाधान की बात करते थे।

गांधी जी और लोहिया जी से अलग पं. दीनदयाल उपाध्याय को भारतीय संस्कृति के विचार प्रवाह का आधुनिक राजनीतिक संचारक कहा जाता है। गांधी जी ने आरंभिक दौर में जिस अंत्योदय की बात की थी उसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में लेकर उन्होंने सर्वोदय की बात की। भारतीय संस्कृति की मूलाधार 'समग्रता' को दीनदयाल जी ने एकात्मता के रूप में व्याख्यायित किया। एकात्मता यानि अलग-अलग विषमताओं पर समान रूप से विचार। मन, बुद्धि, शरीर, प्रवृति सभी की एकात्मता। दूसरे शब्दों में एकात्मता यानि भारतीय दर्शन की अद्वैत भावना। एकात्म मानववाद की अवधारणा में दीनदयालजी ने सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहलुओं के साथ-साथ आर्थिक पहलुओं पर भी पर्याप्त चिंतन किया। उन्होंने अपने दर्शन को स्वयं जिया। उनके व्यक्तित्व में शुद्ध भारतीयता की छाप थी। उन्होंने मौजूदा चुनौतियों का गंभीर अध्ययन, चिंतन और मनन किया।

एकात्म मानववाद के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय ने महान चिंतक, श्रेष्ठ संगठक और आदर्श राजनेता के रूप में संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने की अवधारणा को मूर्त रूप दिया। उनके द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद केवल भारत के लिए ही नहीं, मानव मात्र के कल्याण के लिए समर्पित है। इसे विश्व दर्शन भी कहा जाय तो उत्तम होगा। अतीत में भारत ने ऐसे ही विचार के आधार पर विश्व गुरू होने का सम्मान पाया था। व्यक्ति कल्याण से विश्व कल्याण की उदान्त भावना से परिपूर्ण विकास की भारतीय अवधारणा के प्रवर्तक पं. दीनदयाल जी का जीवनवृत्त एवं कृतित्व का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है। पं. दीनदयाल जी का स्वयं का जीवन आदर्श और अनुकरणीय रहा है। वे एक ऐसे कर्मयोगी रहे जिन्होंने अपना पूरा जीवन ही मानववाद के पवित्र लक्ष्य के लिए समर्पित कर दिया। उनके द्वारा प्रस्तुत एकात्म मानववाद के अनुसार-

> ''आज देश में करोड़ों मानव हैं जो मानव के किसी भी अधिकार का उपभोग नहीं कर पाते। शासन के नियम और व्यवस्थाएँ, योजनाएँ और नीतियाँ, प्रशासन का व्यवहार और भावना इनको अपनी परिधि में लेकर नहीं चलती प्रत्युत उन्हें मार्ग का रोड़ा ही समझा जाता है। हमारी भावना और सिद्धांत है कि वह मैले-कुचैले अनपढ़ मूर्ख लोग हमारे नारायण हैं। हमें इनकी पूजा करनी है। यह हमारा सामाजिक एवं मानव धर्म है। जिस दिन हम इनको पक्के, सुंदर और सभ्य घर बनाकर देंगे, जिस दिन हम इनके बच्चों और स्त्रियों को शिक्षा और जीवन दर्शन का ज्ञान देंगे, जिस दिन हम इनके हाथ और पाँव की बिवाइयों को भरेंगे और जिस दिन इनको उद्योग धंधों की शिक्षा देकर इनकी आय को ऊँचा उठा देंगे, उसी दिन तो हमारा भातृ भाव व्यक्त होगा। ग्रामों में

जहाँ समय अचल खड़ा है, जहाँ माता-पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ हैं वहाँ जब तक हम आशा और पुरुषार्थ का संदेश नहीं पहुँचा पाएंगे तब तक राष्ट्र के चैतन्य को जागृत नहीं कर सकेंगे। हमारी श्रद्धा का केन्द्र, आराध्य और उपास्य, हमारे पाठ्यक्रम और प्रयत्न का उपकरण तथा उपलब्धियों का मानदण्ड वह मानव होगा जो आज शब्दशः अनिकेत और अपरिग्रही है। अंतिम व्यक्ति को लक्ष्य बनाने से अच्छा है इस अंतिम व्यक्ति को लक्षित कर कार्य करना चाहिए।''

संक्षिप्त जीवन परिचय

पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी के जन्म के संबंध में एक मान्यता के अनुसार उनका जन्म 25 सितम्बर 1916 को मथुरा जिले के ग्राम नगला चंद्रभान में हुआ था। (संदर्भ- म.प्र. संदेश (सितंबर 2014) में प्रकाशित लेख एक दूरदृष्टा लेखक राजेश सिरोठिया)। उनके पिता का नाम श्री भगवती प्रसाद और माता का नाम श्रीमती राम प्यारी था। श्री भगवती प्रसाद रेलवे में स्टेशन मास्टर के पद पर जलेसर मार्ग पर पदस्थ थे। पं. दीन दयाल का बचपन का नाम 'दीना' था। आपके छोटे भाई का नाम शिवदयाल 'शिबू' था। बचपन में ही आपके माता-पिता का देहांत हो जाने से आपका लालन-पालन आपके नाना चुन्नीलाल और मामा राधारमण ने किया। अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत उन्होंने आठवीं एवं दसवीं की परीक्षाएँ अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। गणित विषय में विशेष योग्यता हासिल करने पर उन्हें बोर्ड एवं विद्यालय द्वारा स्वर्ण पदक दिए गए साथ ही दस रूपये महीने की छात्रवृत्ति तथा दो सौ रुपये का पुरस्कार सीकर महाराज ने दिया। कुछ समय बाद 18 नवम्बर 1934 को उनके छोटे भाई का भी निधन हो गया लेकिन फिर भी उन्होंने धैर्य नहीं खोया और सभी आघातों को सहते हुए अध्ययन में जुटे रहे। इंटरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा बिरला कॉलेज में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए। बिरला कॉलेज के मालिक सेठ घनश्याम दास बिरला ने तत्समय उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि ''मैं बहुत खुश हूँ कि हमारे विद्यालय में दीनदयाल जैसा छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहा है। इस तरह के छात्र सभी के लिए एक मिसाल जैसे होते हैं। मुझे इस छात्र की क्षमता देखकर लगता है कि भविष्य में यह सफलता के उस पायदान पर होगा, जहाँ पहुँचने की केवल कल्पना ही की जा सकती है।'' बिरला जी ने पंडित जी को स्वर्ण पदक प्रदान करते हुए कहा कि ऐसा होनहार एवं बहुलक्षणी छात्र, अगर एक शिक्षक के रूप में मिल जाए तो बहुत ही लाभकारी होगा। दीनदयाल जी ने अपने अध्ययन की पूर्णता हेतु समय चाहते हुए सेठ जी के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा बी.ए. की पढ़ाई कानपुर के एस.डी. कालेज से करने उपरांत एम.ए. अंग्रेजी

की पढ़ाई करने हेतु सेंट जोंस कॉलेज आगरा में प्रवेश लिया। इसी दौरान आपकी ममेरी बहिन रामदेवी के निधन के कारण आपको एम.ए. की पढाई छोड़नी पड़ी। इसके बाद आपने एल.टी. की पढ़ाई प्रयाग से की। स्वयं सेवक संघ के संपर्क तथा राष्ट्रीयता और मानवीयता की भावना से ओतप्रोत होने के कारण उन्होंने विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। विपरीत परिस्थतियों के बाबजूद वे कभी अपने लक्ष्य से नहीं भटके।

देश की अखण्डता और एकता के लिए सतत् प्रयासरत रहे पं. दीनदयाल जी ने देश की आजादी के संघर्ष में और आजादी के बाद देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने में कमी नहीं छोड़ी। समय-समय पर देश के समक्ष समीक्षात्मक टिप्पणी के रूप में अपने विचार रखे इसीलिए पंडित जी को एक क्रियाशील दार्शनिक के रूप में जाना जाता है। उनकी मान्यता थी कि ''संस्कार, शिक्षा, लोकमत-परिष्कार व नियमन सही लक्ष्मण रेखा है। इसी की मर्यादा में हमें प्रयोग करना चाहिए। मानव की श्रेष्ठता ही सर्वश्रेष्ठता है।'' वे बीसवीं शताब्दी के प्रकांड पंडित और महानपुरुष थे।

पंडित दीनदयाल जी एकात्म मानववाद के अनुभाविक दृष्टा थे। एकात्म मानववाद विश्व की वह रचना है जिसमें उन्होंने भारतीय एवं पश्चिमी जगत के विचारों का सम्मिश्रण उल्लखित किया है। पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति की तात्विक पृष्ठभूमि ही एकात्म के सृजन का मुख्य आधार बनीं।

21 अक्टूबर 1951 को जन संघ की स्थापना से लेकर कालीकट के चौदहवें अधिवेशन तक लगातार भारतीय जन संघ के महामंत्री रहे। इस दौरान उन्होंने भारतीय जन संघ का व्यापक प्रचार-प्रसार किया, देश व्यापी यात्राएँ कीं और संघ के मजबूत आधार देने की सफल कोशिश की। पं. दीनदयाल जी ने सदैव अपने कार्यकर्ताओं के बीच एक शिक्षक की भूमिका निभाई।

1967 के चुनाव में उन्होंने कहा था... ''क्योंकि राजनीति के क्षेत्र में कांग्रेस के निष्प्रभावी होने और धीरे-धीरे हटने के साथ इस बात की महती आवश्यकता है कि एक राष्ट्रीय और प्रजातंत्रीय दल का विकल्प के रूप में अविर्भाव हो, यह कार्य जोड़-तोड़ से संभव नहीं है। उसके लिए स्पष्ट कार्यक्रम, सुनिश्चित नीति, सही सिद्धांत और सुदृढ़ संगठन की आवश्यकता है।''

जन संघ का चौदहवाँ अधिवेशन पं. दीनदयाल जी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ था लेकिन वे मात्र 43 दिनों तक ही अध्यक्ष पद पर रह सके। 10 फरवरी 1968 को मुगल सराय स्टेशन पर उनकी हत्या कर दी गई। इस बात का खुलासा 11 फरवरी 1968 को प्रात: 4 बजे हुआ। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर भारतीय राजनीति को एक नई दिशा देने वाले महामानव पं. दीनदयाल पंचतत्व में विलीन हुए।

उनके विचार एवं सिद्धांत आज भी संपूर्ण राष्ट्र का मार्गदर्शन कर रहे हैं। उनके निधन पर शोक संवेदना व्यक्त करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था ''श्री उपाध्याय जी व्यक्तिगत रूप से सर्वप्रिय नेता और आदर्श व्यक्तित्व थे। उनका संपूर्ण जीवन देश की एकता और संस्कृति को समर्पित था। श्री माधव राव सदा शिव राव गोलवलकर (गुरुजी) ने कहा था, हम सभी को यह प्रयास करना होगा कि पंडित जी जैसी निष्ठा हमारे अंदर भी आए। उनकी तरह दायित्व निभाने की योग्यता हर एक को बढ़ानी चाहिए।''

साहसी पत्रकार और पुस्तक लेखक

उन्होंने 'पांचजन्य', हिमालय एवं राष्ट्रभक्त पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया और अपने निर्भीक विचारों को सदैव प्रस्तुत किया। तत्कालीन विचारक भाऊराव जी के प्रस्ताव पर बाल स्वयंसेवकों के लिए पुस्तक का लेखन किया। 'सम्राट चन्द्रगुप्त' नामक बाल उपन्यास का सृजन एक ही सत्र में किया था। उनकी भाषा सुस्पष्ट एवं सरल थी। युवाओं के लिए आपने जगद्गुरू शंकराचार्य पुस्तक लिखी। वे पुस्तकों एवं व्याख्यानों के माध्यम से लोगों को 'भारतीय संस्कृति' से परिचित कराना चाहते थे।

पं. दीनदयाल जी की प्रमुख कृतियाँ

पं. दीनदयाल जी के द्वारा लिखी गयी पुस्तकों में उनके अनेक भाषणों का उल्लेख है। परमसुख का मार्ग, मैं और हम, राष्ट्र की जीवन दायिनी शक्ति, राष्ट्र और राज्य, राष्ट्र का स्वरूप, चित्ति, सेकुलर, अर्थ-अनर्थ, राष्ट्र : प्रकृति और विकृति, लोकतंत्र परिष्कार, परं वैभव नमतु मे तत्व स्वराष्ट्रम्, संगठन का आधार : राष्ट्रवाद, सामंजस्य पूर्ण समाज व्यवस्था, दोउन राह न पाई, विकेंद्रीकरण, गुरुपूजा : स्वदेशी-विदेशी, हमारा राष्ट्रध्वज, विजय आकांक्षा और जीवनदर्शन। आपकी कुछ प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं : राष्ट्रजीवन की दिशा, लोकमान्य तिलक की राजनीति, जनसंघ का सिद्धांत और नीति, जीवन का ध्येय, राष्ट्र जीवन की समस्याएँ, राष्ट्रीय अनुभूति, अखण्ड भारत, भारतीय राष्ट्रधारा का पुनः प्रवाह, इनको भी आजादी चाहिए, अमेरिकी अनाज, भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा, बेकारी: समस्या और हल, टैक्स या लूट, विश्वासघात, एकात्म मानववाद, सम्राट चंद्रगुप्त, जगद्गुरू शंकराचार्य, राष्ट्रचिंतन, स्वतंत्रता की साधना और सिद्धि, हिन्दू संस्कृति की विशेषता, पांचजन्य, राष्ट्रात्मा या विश्वासात्मा, धर्म धारण से, धर्मराज्य क्या और कैसे? इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा में निबद्ध The Two plans, Political Diary, Devaluation, Integral Humanism भी प्रमुख हैं।

राष्ट्रवादी विचारधारा

उन्होंने अर्थवादी, राजनीतिवादी, मतवादी और संस्कृतिवादी समूहों के बारे में विचार

व्यक्त करते हुए ''भारतीय राजनीति की एक मौलिक भूल'' नामक व्याख्यान में कहा था कि ''हमारे राजनीतिज्ञ भारत में प्रत्येक वर्ग को अलग-अलग मानकर चलते हैं और यही सबसे बड़ी भूल है। कामरूप से कच्छ और कश्मीर से कन्याकुमारी तक देश का कोई भी भाग किसी से अलग नहीं है। जिस तरह मानव शरीर के निर्माण में प्रत्येक अंग का योगदान होता है। कोई भी अंग अपने स्वतंत्र कार्य के लिए स्वतंत्र नहीं है बल्कि सभी अंग शरीर के लिए क्षमतानुसार कार्य करते हैं। यह मत सोचो कि राष्ट्र ने हमारे लिए क्या किया, बल्कि यह सोचो कि हमने राष्ट्र के लिए क्या किया। केवल अपने लिए कुछ करना, कुछ सोचना हमारी भूल है। हमें जो भी करना है, राष्ट्रहित में करना है।''

अखण्ड भारत की योजना

पं. दीनदयालजी ने भारत की अखण्डता से प्रेरित होकर 'अखण्ड भारत क्यों?' नामक पुस्तक लिखी जिसमें भारत की प्राचीन, अखण्डता, विद्वता और एकता का सटीक व्याख्या है। भारत विभाजन के समय अपना पक्ष रखते हुए उन्होंने कहा था ''अखण्ड भारत देश की भौगोलिक एकता का परिचायक ही नहीं, बल्कि जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का द्योतक है, जो अनेकता में एकता का दर्शन कराता है। अतः अखण्ड भारत हमारे लिए कोई राजनीतिक नारा नहीं है, बल्कि यह तो हमारे संपूर्ण जीवन दर्शन का मूलाधार है।''

पं. दीनदयालजी को भारत के विभाजन से गहरा आघात लगा था साथ ही विभाजन के समय हुए रक्तपात ने उनकी अंतरात्मा को झकझोर दिया। देश की अखण्डता के संदर्भ में उन्होंने कहा था ''वास्तव में भारत को अखण्ड रखने का मार्ग युद्ध नहीं है। युद्ध से भौगोलिक एकता तो स्थापित हो सकती है, राष्ट्रीय एकता नहीं। अखण्डता भौगोलिक ही नहीं, राष्ट्रीय भी हो। देश का विभाजन दो राष्ट्रों के सिद्धांत और उसके साथ समझौते की प्रवृत्ति के कारण हुआ। अखण्ड भारत एक राष्ट्र के सिद्धांत पर मन, वचन एवं कर्म से डटे रहने पर सिद्ध होगा। आज की परिस्थति में जो असंभव लगता है वह कालांतर में संभव हो सकता है लेकिन आवश्यकता है कि आदर्श हमारे सम्मुख हमेशा ही जीवित रहे।''

राष्ट्रभाषा से लगाव

राष्ट्रीयता के साथ-साथ पं. दीनदयाल उपाध्याय जी राष्ट्रभाषा को भी बढ़ावा देना चाहते थे। राष्ट्रभाषा से विशेष लगाव होने और उसके विशेष सम्मान हेतु इसके अधिकाधिक प्रयोग की बात कही।

राष्ट्र के विकास में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा को दीनदयाल जी एक सामाजिक उत्तरदायित्व मानते हैं। उनके अनुसार- ''समाज के हित एवं विकास के लिए बच्चों की शिक्षा आवश्यक है। जन्म से एक

बच्चा जानवर के समान ही है। वह समाज का जिम्मेदार सदस्य केवल शिक्षा और संस्कृति के कारण ही बन पाता है।''

पंडित दीनदयालजी ने शिक्षा के संबंध में अपने विचारों में कहा है- ''शिक्षा समाज से भी उसी प्रकार से जुड़ी है, जैसे किसी विद्यार्थी से। समाज के निर्माण में एक गतिमान नियम कार्य करता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने अनुभव देता रहता है। यही प्रक्रिया सुशिक्षित वर्ग का सृजन करती है। अपने अनुभवों का परस्पर आदान-प्रदान ही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा के बिना समाज के निर्माण की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। शास्त्रों का कथन है कि शिक्षा वह ऋषि ऋण है जिसे चुकाना प्रत्येक मानव का परम कर्तव्य है।''

किसी भी राष्ट्र की सामाजिक स्थिति अपने भूतकाल का ज्ञान गंभीरता से करती है। राष्ट्र की नई पीढ़ी का अंदाजा उस राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था से ही लगाया जा सकता है। राष्ट्र की नई पीढ़ी भविष्य की उज्जवल रूप-रेखा बनाती है। शिक्षा का आदान-प्रदान और अनुभवों का परस्पर आवागमन ही शिक्षा के विकास का उत्तम मार्ग है। शिक्षा प्राप्ति के प्रमुख मार्ग बताते हुए उन्होंने बताया कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभवों से किसी न किसी को शिक्षित करने में योगदान करता है क्योंकि समाज में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक गतिविधियों से जुड़कर संस्कृतियों और संस्कारों को ग्रहण करता है।'' संस्कार पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली प्रक्रिया है। माता-पिता गुरुजन या अन्य कोई भी संस्कार प्रदान करने में सहायक हो सकता है। संस्कार समाज को नई दिशा देते हुए अपनी प्राचीन संस्कृति का स्मरण कराते हैं। शिक्षा के साधन के रूप में अध्यापन को मान्य करते हुए वे इसे कई माध्यमों से किया जाने वाला सुकार्य मानते हैं। एक शिक्षक समाज को सुरक्षित करने का दायित्व लेता है। अध्यापन केवल स्कूल या कॉलेज में नहीं बल्कि यह कहीं भी संपन्न हो सकता है। इसी प्रकार स्वाध्याय के माध्यम से व्यक्ति स्वयं अध्ययन करता है। इस मार्ग पर चल कर व्यक्ति मौलिक विचारों की अमूल्य संपत्ति का स्वामी बन सकता है।

बच्चों को शिक्षा देना समाज के अपने हित में हैं। जन्म से मानव पशुवत पैदा होता है। शिक्षा और संस्कार उसे समाज का अभिन्न अंग बनाते हैं। शिक्षा सशुल्क नहीं होनी चाहिए। शुल्क सहित शिक्षा व्यवस्था हमें बचपन से ही व्यक्तिवादी बनाती है। शिक्षा व्यवस्था समाज का कर्तव्य है। इसी तरह चिकित्सा भी नि:शुल्क होनी चाहिए। समाज की ओर से जीवन यापन और विकास के लिए न्यूनतम की गारंटी तो होनी ही चाहिए। यद्यपि उन्होनें यह प्रश्न भी उठाया कि इस न्यूनतम की व्यवस्था कैसी होगी? इसके लिए तो प्रबल पुरूषार्थ करना होगा। पुरुषार्थ विहीन व्यक्ति समाज पर भार है।

सही शब्द-सही अर्थ

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने भाषण सही शब्द-सही अर्थ में राष्ट्र, धर्म, समाज, संस्कृति, और राष्ट्र की विशद व्याख्या की थी। उनके अनुसार ''राष्ट्र किसी व्यक्ति विशेष का नहीं होता बल्कि इस पर तो धरती के उस प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार होता है जो इसके अधिकारों एवं संस्कृति को अपने जीवन में अपनाता है। संस्कृति और राष्ट्र में तो शरीर और आत्मा जैसा संबंध है। जिस प्रकार आत्मा के शरीर से निकलते ही शरीर का अस्तित्व बेकार हो जाता है, उसी प्रकार संस्कृति न होने पर राष्ट्र का भी कोई औचित्य नहीं होता है।'' पंडित जी सदैव राष्ट्र के विकास के बारे में ही सोचते रहते थे और उसे ऊँचाईयाँ प्रदान करने का प्रयास करते थे।

धर्म धारणा

पंडित जी का मानना था कि धर्म बहुत व्यापक शब्द है। केवल मंदिर, मस्जिद, चर्च या गुरुद्वारा का अर्थ धर्म नहीं है। जो जीवमात्र के हित की बात करे वही धर्म है और धर्म से ही हमें यह धारणा होती है कि यह हमारी आत्मा का कवच है। किसी भी पद्धति को भाव, आस्था, नियम और शिष्टाचार से अपनाया जाए, वही धर्म है। समाज, प्रजा, जीव जगत और सृष्टि सभी की धारणा धर्म से ही है। यदि इनके बीच से धर्म को हटा दिया जाए तो सब समाप्त हो जाएंगे।

कुशल राजनीतिज्ञ लेकिन राजनीति से अलिप्त स्वयं सेवक

भारतीय जनसंघ के लिए समर्पित भाव से काम करने वाले उपाध्याय जी ने सत्रह वर्ष तक जनसंघ के महामंत्री के पद पर रहते हुए संगठनकर्ता एवं विचारक के रूप में काम किया। उन्होंने अपने सिद्धांतों से कभी समझौता नहीं किया। वे कहते थे–

> ''जनसंघ एक दल नहीं, वरन एक आंदोलन है। यह राष्ट्रीय अभिलाषा का स्वयं स्फूर्त निर्झर है। यह राष्ट्र के नियत लक्ष्य को आग्रह पूर्वक प्राप्त करने की आकांक्षा है।''

उनकी नेतृत्व क्षमता अद्‌भुत थी। वे आत्मविश्वासी एवं महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। अपनी राजनैतिक भावना के अनुरूप उन्होंने सांस्कृतिक पुनरूत्थान-प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा कि ''केवल भौगोलिक एकता राष्ट्रीयता के लिए पर्याप्त नहीं है। एक देश के निवासीजन एक राष्ट्र तभी बनाते हैं जब वे एक संस्कृति द्वारा एक रूप कर दिए गए हों। जब तक भारतीय समाज एक संस्कृति का अनुगामी था तब तक अनेक राज्य होते हुए भी यहाँ मूलभूत राष्ट्रीयता बनीं रही लेकिन जब से विदेशी शासकों द्वारा एकात्मकता को भंग कर विदेशपरक संस्कृतियों को इस देश में जन्म दिया है तब से भारत की राष्ट्रीयता संकटापन्न है। भारत की राष्ट्रीयता के विकास और दृष्टिकोण के लिए यह आवश्यक है

कि भारत में एक संस्कृति का पोषण हो।''

''पं. दीनदयाल जी राजनीति के मोहपाश में कभी भी बंधे नजर नहीं आए जबकि वे एक राजनीतिक दल के महामंत्री थे फिर भी उनके दिल में प्रत्यक्ष राजनीति में विशेष स्थान पाने की कोई इच्छा नहीं थी। वे भारतीय जनसंघ को एक संस्कृतिवादी दल के रूप में विकसित करना चाहते थे। यही उनका मुख्य उद्देश्य था। वे कहते थे- ''मैं राजनीति के लिए राजनीति में नहीं हूँ। बल्कि राजनीति में संस्कृति का राजदूत हूँ। राजनीति से संस्कृति का शून्य हो जाना अच्छा नहीं हैं।''

जब 1956 में राज्य पुनर्गठन के समय देश में अशांति का वातावरण बन रहा था, और विदेशों में यह भ्रामक स्थिति पैदा हो गई कि भारत में अस्थिरता आ गई है तो पं. नेहरू की विदेश यात्रा को अपना पूर्ण समर्थन देते हुए पं. दीनदयाल जी ने कहा था ''हमारी पं. नेहरु के साथ चाहे कितनी ही मत भिन्नता हो और चाहे जितना हम उनकी नीति के विरोध में आंदोलन चला रहे हों, मैं अपने प्रधानमंत्री को, जिस समय वे विदेश यात्रा पर गए हुए हैं, विश्वास दिलाता हूँ कि भारतीय जनसंघ की सद्भावनाएँ एवं पूर्ण समर्थन इस समय उनके साथ है।''

अर्थव्यवस्था

पं. दीनदयाल जी उपाध्याय के अनुसार- ''हमें ऐसी अर्थव्यवस्था चाहिए जो हमारे मानवत्व को विकसित कर सके, उसके ऊपर प्रतिकूल प्रभाव न डाले और जिसके द्वारा हम मानव को ऊँचे देवत्व के रूप को प्राप्त कर सकें। चूंकि हमारे यहाँ मानव जीवन का पूर्ण विकास 'देवत्व' के रूप में ही माना गया है अत: इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें अर्थ की मर्यादाएँ तय करनी चाहिए।''

अर्थ की मर्यादाएँ

लोगों को भरण-पोषण के लिए, जीवन के विकास के लिए और राष्ट्र की धारणा और विकास के लिए जिन मौलिक साधनों की आवश्यकता होती है उनका उत्पादन, अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिए। पश्चिम के अर्थशास्त्र में आवश्यकताओं की निरन्तर पूर्ति होने पर इच्छाओं को बराबर बढ़ाते जाना अभीष्ट माना गया। अर्थ की कोई मर्यादा नहीं है। वहाँ अर्थव्यवस्था उपभोग प्रधान होकर विनाशोन्मुख है। पुराना फेंको-नया खरीदो। नया खरीदने की चाह पैदा करना, माँग पूरी न करना, माँग पैदा करना अर्थव्यवस्था का सही लक्ष्य नहीं हो सकता।

हमें प्राकृतिक सम्पदा की भी मर्यादा रखनी होगी। हम प्रकृति से उतना ही लें जिसे वह पुन: पूरित कर ले। पेड़ से फल लेना हानिकारक नहीं है लेकिन भूमि से अधिक फसल लेने के लोभ में हम ऐसे उर्वरकों का प्रयोग करने लगे हैं जिनसे कुछ दिन बाद

उसकी उत्पादन शक्ति समाप्त हो जाती है। धरती बंजर हो जाती है। हमें मर्यादित उपभोग की ओर विचार करना चाहिए। बचत का दृष्टिकोण बढ़ाना चाहिए। हम प्रकृति के शोषण पर निर्भर न रहें बल्कि उसके पोषण का भी ध्यान रखें। शोषण नहीं दोहन हमारी अर्थव्यवस्था का आधार बनें।

पश्चिमी नारा है ''कमाने वाला खाएगा'' जबकि हमें ''कमाने वाला खिलाएगा'' तथा सो खाएगा'' की ओर बढ़ना चाहिए। खाने का अधिकार तो जन्म से ही प्राप्त होता है। कमाने की पात्रता शिक्षा से आती है। समाज में जो कमाते नहीं, वे भी खाते हैं। बच्चे, बूढ़े, रोगी, अपाहिज सबकी चिंता समाज करता है। हमारी सामाजिकता और संस्कृति का मापदण्ड इस कर्त्तव्य निर्वाह की तत्परता है। इस कर्त्तव्य के निर्वाह की क्षमता पैदा करना ही अर्थव्यवस्था है। हमें ऐसी समाज व्यवस्था और अर्थव्यवस्था बनानी चाहिए जो पुरुषार्थ को प्रोत्साहित करे अन्यथा वह आत्मघाती है। अर्थव्यवस्था 'प्रत्येक को काम' पर केन्द्रित होनी चाहिए। काम/श्रम के लिए अपेक्षित पूँजी निर्माण के लिए जरूरी है सम्पूर्ण उत्पादन का उपभोग न कर कुछ बचाया जाए और उसे भावी उत्पादन के लिए काम में लाया जाए। मानव श्रम को सुखकर बनाने, उसकी उत्पादकता एवं क्षमता को बढ़ाने के लिए ही यंत्र बने। यंत्रों को मानव का सहायक होना चाहिए न कि प्रतिस्पर्धी। मानव श्रम का मूल्यांकन रुपयों में नहीं होना चाहिए। यह पूँजीवादी दृष्टिकोण का दुर्गुण होता है। यदि मशीन, मानव का स्थान लेकर उन्हें भूखा मारे तो यह बहुत बड़ी बुराई है। हमें मशीन की मर्यादा बनानी चाहिए। हमारी मशीनें, हमारी आर्थिक जरूरतों के अनुकूल होनी चाहिए। अंतत: हमें ''कमाने वाला खाएगा'' जैसे पश्चिमी नारे की अपेक्षा ''खाने वाला कमाएगा'' का लक्ष्य रखकर भारतीय अर्थव्यवस्था विकसित करनी होगी। डिजीलस के अनुसार ''शोषकों का पुराना वर्ग तो समाप्त हो चला है किन्तु नौकरशाही का नया शोषण वर्ग उत्पन्न हो रहा है। इसे समझना होगा कि राज्य के शासनाधिकारियों में उप्युक्त कर्त्तव्य भावना एवं समाज निष्ठा न रही तो पक्षपात और भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिलता है।''

उपाध्याय जी ने अत्यंत दृढ़तापूर्वक कहा कि ''भगवान की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव अपने आप को खोता जा रहा है। हमें मानव को पुन: अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करना होगा, उसकी गरिमा का उसे ज्ञान कराना होगा, उसकी शक्तियों को जगाना होगा तथा उसे देवत्व की प्राप्ति हेतु पुरुषार्थशील बनाना होगा जो विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के द्वारा ही संभव है।'' यह अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है जिसे पूरा करने के लिए दीनदयाल उपाध्याय जी ने समग्रत: अर्थव्यवस्था के बारे में अपना चिंतन प्रस्तुत करते हुए बताया था कि– ''हमारी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवनस्तर की आश्वस्ति तथा राष्ट्र की सुरक्षा सामर्थ्य की व्यवस्था होनी चाहिए। हमारी अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए

जिसमें न्यूनतम स्तर के उपरांत उत्तरोत्तर समृद्धि (जिसमें व्यक्ति और राष्ट्र को वे साधन उपलब्ध हो सके जिनसे वह अपनी चित्ति के आधार पर विश्व की प्रगति में योगदान कर सके) के अवसर मिलने चाहिए। हमारी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक वयस्क और स्वस्थ व्यक्ति को साभिप्राय रोजगार का अवसर देना चाहिए तथा प्रकृति के साधनों को मितव्ययिता के साथ उपयोग करने की व्यवस्था होनी चाहिए। हमारी अर्थव्यवस्था में राष्ट्र के उपादानों का विचार कर अनुकूल प्रौद्योगिकी का विकास करना चाहिए। हमारी अर्थव्यवस्था को 'मानव की अवहेलना' न कर उसके विकास में साधक होकर समाज के सांस्कृतिक एवं अन्य जीवन मूल्यों की रक्षा करनी चाहिए। यह लक्ष्मण रेखा है जिसका अतिक्रमण अर्थ-रचना किसी भी परिस्थिति में नहीं कर सकती। हमारी अर्थव्यवस्था में (उद्योगों में) राज्य, व्यक्ति तथा अन्य संस्थाओं के स्वामित्व का निर्णय व्यावहारिक आधार पर होना चाहिए। 'स्वदेशी' अर्थव्यवस्था के लिए हमें स्वदेशी के भावनात्मक रूप को समझकर उसके सृजन का आधार एवं अवलम्ब बनना चाहिए। इसके लिए सभी को यथास्थिति के मोह को छोड़कर नव निर्माण करना होगा। यदि राष्ट्र को सबल, समृद्ध और सुखी बनाना है तो राष्ट्र रचना का व्यावहारिक प्रयत्न करना ही होगा।

भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

हमारा ध्येय संस्कृति का संरक्षण नहीं अपितु उसे गति देकर सजीव व सक्षम बनाना होना चाहिए। हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिसके आधार पर हमारा समाज स्वस्थ और विकासोन्मुख हो। हमें अनेक सामाजिक रुढ़ियाँ खत्म करनी होंगी और बहुत से सुधार करने होंगे। आज यदि समाज में छुआछूत और भेदभाव घर कर गए हैं (जिसके कारण लोग मानव को मानव समझकर नही चलते जो राष्ट्र की एकता के लिए घातक है) तो हमें ऐसी कुप्रथा को खत्म करना होगा। हमें ऐसी संस्थाओं का निर्माण करना होगा जो अपने अंदर कर्म चेतना पैदा करें। हम समाज को स्वकेन्द्रित या स्वार्थी बनाने की अपेक्षा राष्ट्रसेवी बनाएँ, सहानुभूति की भावना बढ़ाए, आत्मीयता और प्रेम पैदा करें। हमें अपने राष्ट्र के विराट को जाग्रत करना होगा। अपने प्राचीन के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान का यथार्थवादी आकलन करते हुए भविष्य की महत्वाकांक्षा लेकर कार्य करना होगा। हम विश्व के ज्ञान और भारतीय परम्परा के आधार पर ऐसा भारत निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा। जिसमें जन्म लेने वाला अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ सम्पूर्ण मानव ही नहीं, सृष्टि के साथ एकात्मकता का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ होगा।

एकात्म मानववाद

भारत की प्रकृति और परम्परा के अनुकूल राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति में समर्थ दर्शन है

एकात्म मानववाद। अप्रैल 1965 में पूना (महाराष्ट्र) में सम्पन्न भाषणमाला में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने 'एकात्म मानववाद' का विस्तृत विवेचन करते हुए कहा था–

> ''''स्व' के बगैर स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं। जब तक हमें अपनी असलियत का पता नहीं हो, तब तक हमें अपनी शक्तियों का ज्ञान नहीं हो सकता और न ही विकास संभव है। चूंकि परतंत्रता में समाज का 'स्व' दब जाता है जिससे राष्ट्र अपनी प्रकृति और गुणधर्म के अनुसार सुख की अनुभूति नहीं कर पाता। जिस प्रकार मानव प्रकृति एवं भावों की अवहेलना से व्यक्ति जीवन में अनेक रोग हो जाते हैं, व्यक्ति उदासीन हो जाता है, उसकी कर्मशक्ति क्षीण हो जाती है, वह विकृत होकर कुपथगामी हो जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति के समान राष्ट्र भी प्रकृति के प्रतिकूल चलने पर अनेक व्यथाओं का शिकार हो जाता है। आज देश में अनेक समस्याओं का प्रमुख कारण यही है। राजनीति में बढ़ते स्वेच्छाचार से जनता के मन में नेतृत्व के प्रति अनास्था बढ़ रही है।''

अंग्रेजी दासता के दौरान पश्चिम के ज्ञान–विज्ञान के साथ ही पश्चिमी देशों के रहन–सहन, बोलचाल, खान–पान आदि के तरीके भी इस देश में आए। भौतिक विज्ञान के साथ–साथ नीतिशास्त्र, राज्यव्यवस्था, अर्थनीति, और समाजधारणा के क्षेत्र में उनके मानदण्ड हमारे मानदण्ड बन गए। भारतीय जन जीवन के जीवन मूल्यों पर पश्चिम का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। जब अंग्रेज थे तब तक हम स्वदेशी की भावना से अंग्रेजियत को प्रगति का घातक मानकर दूर रखने में गौरव समझते थे किन्तु जब अंग्रेज चले गए तब अंग्रेजियत का अनुकरण कर रहे हैं। अंग्रेजियत के मोहावरण का परित्याग करना ही हमारे लिए श्रेयस्कर होगा।

पंडित दीनदयाल जी के अनुसार प्रजातंत्र मूलतः यूरोपीय पद्धति है। प्रजातंत्र ने यद्यपि प्रत्येक नागरिक को वोट देने का अधिकार तो दे दिया लेकिन जिन लोगों ने प्रजातंत्र को पाने के संघर्ष का नेतृत्व किया, शक्ति अभी भी उन्हीं के पास है। प्रकारान्तर से यही नेतृत्वकर्ता अभी भी जनता का नेतृत्व कर रहे हैं। पश्चिम में प्रचलित राष्ट्रवाद, पूँजीवाद और समाजवाद ने व्यक्ति की स्वतंत्रता की बलि ले ली इसलिए यह प्रश्न पैदा हो रहा है कि सभी अच्छी बातों के मध्य तालमेल कैसे हो? पश्चिमी देश तालमेल की अपेक्षा गठजोड़ में जुटे हैं। ऐसी स्थिति में हम किससे मार्गदर्शन प्राप्त करें?

आयुर्वेद का मान्य सिद्धांत है ''यदेशस्य यो जन्तुः तद्देशस्य तस्यौषधम्'' अर्थात् अलग–अलग देशों के लिए अलग–अलग औषधियाँ मान्य होती हैं। सर्वत्र एक ही दवा सफल नहीं हो सकती। हमें इस सत्य के साथ अपने देश की परिस्थिति का परिष्कार करना चाहिए। जो ज्ञान और सिद्धांत हमारे हैं उन्हें युगानुकूल और जो बाहर के हैं उन्हें

देशानुकूल बनाकर हमें आगे का रास्ता तय करना चाहिए। विश्व शांति के नारे के साथ बना 'संयुक्त राष्ट्र संघ' अभी भी समस्याओं का वास्तविक निराकरण करने में सफल नहीं हो पाया है बल्कि विभिन्न समस्याएँ ही पैदाकर रहा है। प्रजातंत्र और समाजवाद के चलते शोषण और व्यक्ति की गरिमाहीनता बढ़ रही है। सारा विश्व किंकर्तव्य विमूढ़ है। कोई मार्ग निर्विवाद नहीं है इसीलिए हमें भारतीय संस्कृति का विचार करना ही होगा क्योंकि वह हमारी प्रकृति है।

स्वराज्य तभी साकार होगा जब वह अपनी संस्कृति से अभिव्यक्ति का साधन बन सकेगा। इस अभिव्यक्ति में हमारा विकास भी होगा और हमें आनंद की अनुभूति भी होगी। अत: हमें राष्ट्रीय और मानवीय, दोनों दृष्टियों से भारतीय संस्कृति के तत्वों पर विचार करना चाहिए।

पं. दीनदयाल जी कहते हैं– भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण जीवन का, सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण एकात्मवादी (Integrated) है। भारतीय संस्कृति में जीवन की विविधता अन्तभूत एकता का अविष्कार है और इसलिए उनमें परस्परानुकूलता तथा परस्पर पूरकता है। बीज की एकता ही पेड़ के मूल, तना, शाखाएँ, पत्ते, फूल और फल के विविध रूपों में प्रकट होती है। इन सबके रंग, रूप, तथा कुछ न कुछ मात्रा में गुणों में भी अंतर होता है फिर भी उनके बीज के साथ के एकत्व के संबंध को हम सहज ही पहचान सकते हैं।

परस्पर संघर्ष विकृति का द्योतक है

विविधता में एकता अथवा एकता में विविधता का व्यक्तिकरण ही भारतीय संस्कृति का केन्द्रस्थ विचार है। यदि इस विचार को हम हृदयंगम करें तो विभिन्न सत्ताओं के बीच संघर्ष नहीं होगा। यदि संघर्ष है तो वह प्रकृति का अथवा संस्कृति का द्योतक नहीं, विकृति का द्योतक है। समाज में जो भी विकृतियाँ यानि विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि) हैं वे हमें स्वीकार तो हैं लेकिन अनुकरणीय नहीं हैं, इसलिए त्याज्य हैं। सृष्टि में जैसे संघर्ष दिखता है वैसे ही सहयोग भी नजर आता है। वनस्पति और प्राणी एक दूसरे की आवश्यकता को पूरा करते हुए ही जिन्दा रहते हैं। हमें आक्सीजन वनस्पतियों से मिलती है तथा वनस्पतियों के लिये आवश्यक कार्बन डाई ऑक्साइड प्राणी जगत से प्राप्त होती है। इस परस्पर पूरकता के कारण ही संसार चल रहा है। संसार मे एकता का दर्शन कर, उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचान कर, उसमें परस्परानुकूलता का विकास करना तथा उनका संस्कार करना ही संस्कृति है।

प्रकृति के ध्येय को सिद्धि के अनुकूल बनाना संस्कृति तथा उसके प्रतिकूल बनाना

विकृति है। संस्कृति, प्रकृति की अवहेलना नहीं करती, उससे दुर्लक्ष्य नहीं करती, बल्कि प्रकृति में जो भाव सृष्टि की धारणा तथा उसको अधिक सुखमय एवं हितकर बनाने वाले हैं, उनको बढ़ावा देकर, दूसरी कुप्रवृत्तियों को रोकना ही संस्कृति है।

समृद्धि चाहिए या सुख-शांति

मनुष्य मन, बुद्धि, आत्मा तथा शरीर इन चारों का समुच्चय है। पश्चिमी विचारकों के अनुरूप एकांगी जीवन पद्धति विकसित होने से सब समृद्धि के बाबजूद सुखी नहीं हैं। मानव की प्रगति का मतलब शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा इन चारों की प्रगति है। हम बहुत बार समझते हैं कि भारतीय संस्कृति तो केवल आत्मा का विचार करती है। आत्मा का विचार करना ही हमारी विशेषता है। हम आत्मा की चिंता करते हुए भी शरीर को नहीं भूलते। ''शरीरमाधं खलु धर्मसाधनम्'' अर्थात् शरीर धर्म का प्रथम साधन हैं। शरीर साधन है और आत्मा साध्य। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना हमें स्वीकार है परन्तु वे हमारी सर्वस्व नहीं हैं। मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि, और आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति, उसकी इच्छाओं, कामनाओं, ईषणाओं की संतुष्टि और उसके सर्वांगीण विकास की दृष्टि से ही भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रखे गये हैं। पुरुषार्थ का अर्थ उन कर्मों से है जिनसे पुरुषत्व सार्थक हो। पुरुषार्थों के पालन से सभी को आनंद प्राप्त होता है। यद्यपि मोक्ष परम पुरुषार्थ है तो भी अकेले इसके सेवन से मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। अन्य पुरुषार्थों की अवहेलना करने वाला मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता। निष्काम भाव से कर्म करने वाला पुरुषार्थी ही कर्मबंधन से मुक्त होकर मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। धर्म से अर्थ और काम की सिद्धि हो सकती है। धर्म आधार भूत पुरुषार्थ है फिर भी अन्य पुरुषार्थ अन्योन्याश्रित एक दूसरे के पूरक और पोषक हैं। धर्म से अर्थ सिद्धि होती है। यदि व्यापार ईमानदारी, संयम, अक्रोध, क्षमा, सत्य आदि धर्म के लक्षणों का निर्वाह करते हुए किया जाए तो सफलता की संभावना बढ़ती है। इस प्रकार साधन के रूप में सभी को धर्म अपनाना चाहिए।

शिक्षा समाज का दायित्व या राज्य का ...

प्रसिद्ध विचारक पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार ''बच्चों को शिक्षा देना समाज के अपने ही हित में है।'' शिक्षा और संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। जो काम समाज के अपने हित में हो, उसके लिए शुल्क लिया जाए यह तो उल्टी बात है। कल्पना करें कि कल को शिक्षा शुल्क का बहिष्कार करने अथवा उसे देने में असमर्थ होने के कारण बच्चे पढ़ना बंद कर दें, तो क्या समाज इस स्थिति को सहन करेगा?

शिक्षा निवेश (विनियोजन) है क्योंकि व्यक्ति शिक्षित होने पर समाज के लिए काम करेगा ही। जिस प्रकार पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसा नहीं लेते। हम तो

अपनी ओर से पूँजी लगाते हैं और जानते हैं कि पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही।

आजादी के पूर्व के देशी राज्यों में शिक्षा और चिकित्सा की नि:शुल्क व्यवस्था थी। गुरुकुलों, आश्रमों में तो रहने और खाने का भी प्रबंध रहता था। समाज शिक्षा की व्यवस्था करता था। समाज की ओर से ही जीवनयापन और विकास के लिए न्यूनतम की गारंटी होनी ही चाहिए।

पुरुषार्थ विहीन व्यक्ति समाज पर भार है। इसी प्रकार जो व्यवहार लोगों के पुरुषार्थ में बाधक बन जाए वह आत्मघाती है। ऐसी व्यवस्था में समाज व्यक्तियों के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं कर पाएगा।

मानवतावादी दर्शन/दृष्टिकोण

पं. दीनदयाल जी ने मानवता का केंद्र बिन्दु मनुष्य तथा उसकी गरिमा को माना है। आपके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में ऐसी क्षमता होती है कि वह स्वयं अपने प्रयास में आनंद और पूर्णता प्राप्त कर सकता है। मानवतावादी दर्शन यानि ऐसी चिंतन प्रणाली जो बुद्धि संगत दृष्टिकोण पर आधारित हो और देवीय या अलौकिक बातों की अपेक्षा मानवीय तत्वों को ज्यादा महत्वपूर्ण समझे।

पं. दीनदयाल जी मृत्यु उपरांत ईश्वर के राज्य (स्वर्ग) जाने की अपेक्षा इसी जीवन में सुख, आनंद, उल्लास और परिपूर्णता हासिल करने के लिए ऐसे समाज की परिकल्पना करते थे जो मानवीय हो। देश में मानवतावाद के पक्षधर चिंतकों में राजा राममोहन राय, अरविन्द घोष, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी और दीनदयाल उपाध्याय जी प्रमुख हैं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने एकात्म मानववाद के माध्यम से भारतीय समाज में परिवर्तन को महत्वपूर्ण माना। आप समाजवाद या पूँजीवाद नहीं, प्रत्येक मानव के उत्कर्ष और सुखी जीवन का ध्येय बनाकर कार्य करते रहे। आपकी मान्यता थी कि हम अपनी परम्परा के आधार पर ऐसा भारत निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा और जिसमें मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ सृष्टि के साथ समन्वय स्थापित कर नर से नारायण बनने में समर्थ होगा। यही भारतीय संस्कृति का शाश्वत, दैवीय और प्रवाहमान स्वरूप हैं। मूलत: संसार में एकता का दर्शन कर, उसके विविध रूपों और परस्पर पूरकता को पहचानकर परस्परानुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही एकात्म मानवता है।

मानवतावादी शिक्षण विधि और दर्शन

वर्तमान शासकीय तंत्र आधारित शिक्षण पद्धति अंतत: मानसिक दासता पैदा करती है। तंत्र द्वारा जनता को इस प्रकार शिक्षित किया जाता है कि वह अपनी स्वतंत्रता का कम से

कम उपयोग कर सके। शिक्षा प्राथमिक, उच्च या वैज्ञानिक शिक्षा नहीं बल्कि जनता को बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से ऊपर उठाने की शिक्षा है। मानववाद में विद्यालय का अर्थ उसके सांस्कृतिक पर्यावरण से है। यदि शिक्षक सांस्कृतिक रूप से परिपक्व नहीं है तो वह मानववादी शिक्षण को अपनाने में असमर्थ ही रहेगा। मानववादी शिक्षकों के लिए यह जरूरी है कि वह पाठ्यक्रम, अनुशासन या शिक्षण विधियों को जानने से पहले शिक्षा के दर्शन को समझे। दर्शन शिक्षक को विषय के साथ-साथ छात्रों की अन्तर्निहित शक्तियों और क्षमताओं को गहराई से देखने के लिए प्रेरित करता है। प्रत्येक शिक्षक को दर्शन का अध्ययन, मनन, चिंतन करना चाहिए। दर्शन के अभाव में शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया को ठीक मार्ग पर नहीं चला सकते। ''कोई शिक्षक, शिक्षक हो ही नहीं सकता यदि उसकी कोई दार्शनिक विचारधारा नहीं है। बिना दार्शनिक विचारधारा के शिक्षक 'पंगु' होता है।'' दर्शन शिक्षण विधियों के चयन में सहायक, पाठ्यक्रम निर्माण और संचालन में सहयोगी, शिक्षण तकनीकों तथा व्यूह रचना चयन के साथ-साथ कक्षा के अनुशासन को भी प्रभावित करता है।

भारतीय दर्शन में मोक्ष (मुक्ति) सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मोक्ष पाने के लिए ही श्रेष्ठ कर्म, उच्च जीवन मूल्य आधारित आचरण, श्रेष्ठ तरीकों से धनार्जन, श्रेष्ठ कार्यों पर धन खर्च करना श्रेष्ठ माना गया है। दर्शन ज्ञान को मोक्ष का साधन मानते हुए ज्ञान प्रसार को महत्व देता है। प्राचीनकाल में शिक्षा गुरुकुल या आश्रम में कोलाहल से दूर, प्रकृति के सुरम्य वातावरण में पूर्ण की जाती रही है। गुरुकुल के छात्रों से अपेक्षा रहती थी कि वे जिज्ञासु हो, कर्मशील हो, आज्ञाकारी हो, दत्तचित्त हो, संयमी हो, परिश्रमी हो, साधना करने वाले हो, वाणी पर नियंत्रण करने वाले हो, तीव्र स्मरण शक्ति हो प्रखर बुद्धि वाले हो, जनकल्याणकारी सोच वाले हो, ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो, एकाग्रपूरित एवं सेवा भावी हो। ऐसे शिष्य गुरु आश्रम में विभिन्न शिक्षण विधियों (मौखिक पाठ, टीका, कहानी, शंकासमाधान, भाषण, अभ्यास, श्रवण, मनन) से अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार अध्ययन करते थे। ऐसे शिष्यों, शिक्षकों और गुरु आश्रमों (गुरुकुलों) की आज भी आवश्यकता और उपयोगिता अपरिहार्य है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार समग्रत: समाज मानवीय समूह है। मानव, व्यक्ति मात्र नहीं है। मानव यानि शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का ऐसा समुच्चय, जो केवल ''मैं'' तक सीमित नहीं। प्राय: समाज व्यक्तियों का ऐसा समूह होता है जिसे व्यक्तियों ने स्वयं मिलकर बनाया हो। पश्चिमी विचारक इसे सामाजिक समझौता सिद्धांत कहते हैं। वहाँ व्यक्ति को महत्वपूर्ण माना गया है जो समाज की रचना करता है। भारतीय दर्शन के अनुसार यह विचार ही गलत है कि समाज का निर्माण व्यक्ति से हुआ

है। हमारे भारतीय विचार से समाज स्वयंभू है। जिस प्रकार व्यक्ति पैदा होता है उसी प्रकार समाज भी पैदा होता है। समाज कोई क्लब या कंपनी नहीं, रजिस्टर्ड सोसायटी नहीं, कोऑपरेटिव सोसायटी नहीं। समाज की एक सत्ता है जिसकी अपनी आवाज है, आत्मा है, जीवन है। समाज बनावटी संगठन नहीं है। समाज की अपनी हैसियत (हस्ती) होती है। समाज का भी अपना शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा होती है। समाज व्यक्ति की शक्तियों का बनावटी जोड़ नहीं है। अनुभव की बात यह है कि व्यक्ति और समाज के विचार करने के तरीके अलग-अलग हो सकते हैं। व्यक्ति के विचार करने का तरीका और समाज के विचार करने का तरीका इन दोनों में हमेशा अंतर होता है।

राष्ट्र की आत्मा यानि चित्ति

जब एक मानव समुदाय के समक्ष एक मिशन, विचार या आदर्श होता है तो वह समुदाय किसी भूमि विशेष को मातृभाव से देखता है तभी वह राष्ट्र कहलाता है। इनमें से एक का भी अभाव होने पर राष्ट्र नहीं बनेगा।

जैसे शरीर में 'आत्मा' होती है, आत्मा के कारण व्यक्ति जीवित रहता है। जिस प्रकार आत्मा और शरीर का संबंध छूटने पर हम कहते हैं कि व्यक्ति खत्म हो गया, उसी प्रकार विचार या मूलभूत सिद्धांत है। यह मान्यता का सिद्धांत है। मान्यता का सिद्धांत यानि नाई का उस्तरा। जैसे नाई अपने परम्परागत उस्तरे से ही हजामत बनाता है जबकि कभी उसका उस्तरा (छुरा) बदल जाता है तो कभी उसका बेंट। इसी प्रकार व्यक्ति की अनेक बातें बदल जाने पर भी उसकी मान्यता बनी रहती है। व्यक्ति की आत्मा की तरह राष्ट्र की भी 'आत्मा' होती है। सिद्धांत और नीति में इसे 'चित्ति' कहा गया है। चित्ति किसी समाज की वह प्रकृति है जो जन्मजात है। चित्ति वह मापदण्ड है जिससे हर वस्तु को मान्य या अमान्य किया जाता है। यही राष्ट्र की आत्मा है। इसी आत्मा के आधार पर राष्ट्र खड़ा होता है। यही आत्मा प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा प्रकट होती है।

व्यक्ति यानि राष्ट्र का उपभार

राष्ट्र की आत्मा को प्रकट करने का साधन होता है व्यक्ति। व्यक्ति स्वयं के साथ-साथ राष्ट्र का भी प्रतिनिधित्व करता है। अपने विविध उद्देश्यों को पूरा करने के लिए राष्ट्र जितनी संस्थाओं का संचालन करता है उनका मुख्य उपकरण व्यक्ति ही होता है और इसीलिए वह उनका प्रतिनिधित्व भी करता है। राष्ट्र की व्यापक समष्टियों का प्रतिनिधित्व व्यक्तित्व करता है जो बहुमुखी होता है परन्तु उनमें परस्पर खिंचाव या संघर्ष नहीं अपितु एकात्मकता, समन्वय एवं सामंजस्य रहता है। सामंजस्य पूर्ण व्यवस्था ही मानव आदर्शों के बीच की विसंगतियों को दूर कर उसमें सुख और शांतिपूर्ण विकास कर सकती है।

राज्य और राष्ट्र एक नहीं हैं

डार्विन के अनुसार प्राणी को जिंदा रहने के लिए विभिन्न परिस्थतियों में भिन्न-भिन्न अंगों की जरूरत होती है, उसी अनुसार अंग बनते जाते हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति के अनुसार प्राणशक्ति के सहारे आत्मा जितने अंगों की जरूरत समझती है उसका निर्माण करती है। जैसे शरीर में अंग निर्माण आत्मा करती है वैसे ही राष्ट्र अपनी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए बहुत से अंग निर्माण करता है। इन अंगों को हम संस्थाएँ कहते हैं। अनेक संस्थाओं की तरह 'राज्य' भी एक संस्था है जिसका निर्माण भी राष्ट्र करता है। इस प्रकार राष्ट्र व राज्य एक नहीं हैं लेकिन पश्चिमी समझ राज्य और राष्ट्र को एक ही समझती है।

व्यक्ति एंकागी नहीं है

दीनदयाल जी के अनुसार एक ही व्यक्ति अलग-अलग स्वरूप में अलग-अलग संस्थाओं का अंग होता है फिर भी महत्वपूर्ण यह है कि अनेक अंगों वाला होते हुए भी परस्पर सहयोग, समन्वय एवं पूरकता और एकात्मकता के साथ चल सकता है। यह व्यक्ति का गुण है। जो इस गुण का उपयोग ठीक प्रकार कर सके वह सुखी होगा और जो न कर सके वह दुखी होगा। एक व्यक्ति अपने परिवार में माँ का बेटा, पत्नि व पति, बहन का भाई, पुत्र का मित्र होता है। सभी रिश्तों को वह बड़ी चतुराई से निभाता है। जहाँ झगड़े होते हैं अथवा संघर्ष होता है। सभी रिश्तों को भली प्रकार निभाने वाले का ही समन्वित व्यक्तित्व विकास होता है।

व्यक्ति और समाज में संघर्ष

पश्चिमी दर्शन है कि जीवन का विकास मूलभूत संघर्ष से हुआ है। वे समझते हैं कि राज्य और व्यक्ति में सदैव संघर्ष होना चाहिए। भारतीय संस्कृति न तो व्यक्तियों के बीच और न ही समाज की संस्थाओं में स्थायी संघर्ष या विरोध की बात सोचती है। यदि कहीं संघर्ष होता है तो यह विकृति है। सारा समाज विराट शरीर की भांति है। इनके बीच कभी भी संघर्ष नहीं हो सकता। संघर्ष होगा तो शरीर कैसे चलेगा। सभी अंग एक दूसरे के सहयोगी हैं, पूरक हैं यही एकात्मता है। परस्पर पूरकता और एकात्मकता ही व्यवहार के मापदण्ड हो सकते हैं। कुटुम्ब, जाति, पंचायत, जनपद, राज्य, सब संस्थाएँ राष्ट्र के अंग हैं। उनमें परस्पर संघर्ष या विरोध नहीं, परस्परानुकूलता की वृत्ति ही उचित है।

राज्य सर्वोपरि नहीं

अन्य देश राज्य के साथ-साथ चलते हैं लेकिन हमारे यहाँ राज्य और राष्ट्र अलग हैं। राजनीतिक दृष्टि से हमारा देश कई बार गुलाम बना लेकिन राष्ट्र जिन्दा रहा। चूंकि

हमारा प्राण राज्य नहीं हैं इसलिए राज्य जाने के बाद भी राष्ट्र नहीं गया। पश्चिमी संस्कृति में राज्य को इतना प्रभावी मानते हैं कि सम्पूर्ण शक्ति का केन्द्र वही बन जाता है।

राष्ट्रधर्म

राज्य, राष्ट्र की रक्षा के लिए होता है। राष्ट्र का आदर्श चित/चित्ति की अभिव्यक्ति और व्यवहार के नियमों को ही उस राष्ट्र का धर्म कहते हैं। इस राष्ट्रधर्म की रक्षा सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि धर्म गया तो प्राण गया। जिसने धर्म छोड़ा वह राष्ट्र से मुक्त हो गया।

एकात्मक राज्य और उसका स्वरूप

एकात्मक राज्य अर्थात् ऐसा राज्य जिसमें सारी ताकत सभी संस्थाओं या अंगों अर्थात् पंचायतों की हो। पंचायतों का स्थान ऊँचा हो और राज्य इनको सहयोग करे। वर्तमान पश्चिमी मॉडल में पंचायतों की कोई सत्ता नहीं है। वे राज्य सरकारों की कृपा पर निर्भर हैं। सत्ता का वास्तविक विकेन्द्रीकरण तभी होगा जब पंचायतों की सत्ता को स्वयंभू सत्ता के रूप में स्वीकार किया जाएगा।

ईमानदारी नीति नहीं सिद्धांत है

पश्चिमी लोग कहते हैं– ''व्यापार के मामले में ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ नीति है'' हमारा कहना है ईमानदारी नीति नहीं, सिद्धांत है (Honesty is not a policy but a principle) धर्म में हमारा विश्वास आधारभूत है। समाज में धर्म न हो तो राज्य टिक नहीं सकता। उपलब्ध संसाधनों का सदुपयोग धर्म से ही निश्चित होता है। मनुष्य की मनमानी रोकने, स्वैराचरण पर प्रतिबंध लगाने तथा प्रेय के पीछे श्रेय को न भूलने देने में धर्म ही सहायक होता है इसलिए धर्म का विशेष महत्व है। यद्यपि अर्थ के अभाव में धर्म की साधना संभव नहीं हैं।

''बुभुक्षितः किम करोति पापम् क्षीणाः नराः निष्करुणाः भवन्ति।'' अर्थात् भूखा सब पाप कर सकता है। अर्थ के अभाव से होने वाले कुकर्मों की आशंका के चलते ही यह सुनिश्चित करने का आदेश है कि अर्थ का अभाव नहीं होने देना चाहिए, इसीलिए राज्य की स्थापना के लिए धर्म अत्यंत आवश्यक है।

न अर्थ का अभाव हो न ही अर्थ का प्रभाव

अर्थ के अभाव की भांति अर्थ का ज्यादा प्रभाव भी घातक होता है। जब व्यक्ति और समाज में अर्थ 'साधन' की अपेक्षा साध्य बन जाता है तथा जीवन की सभी विभूतियाँ अर्थ से प्राप्त होने लगती हैं, तो वहाँ अर्थ का प्रभाव (वर्चस्व) स्थापित हो जाता है। इस प्रकार अर्थ संचय के लिए व्यक्ति नानाविधि पापाचार करता है। अधिक धन आने से

विलासिता बढ़ती है। अर्थ के सदुपयोग की अपेक्षा उपभोक्तावाद बढ़ता है। अर्थ के प्रभाव को निरंकुश न होने की समझ शिक्षा व संस्कारों से संभव है।

दण्ड का प्रभाव

जब धर्म भाव की स्थापना होती है तो दण्ड की जरूरत नहीं होती लेकिन जब धर्म के स्थान पर दण्ड ही प्रजा के आचरण का नियामक बन जाए तो दण्डनीति प्रभावी होने से धर्म का ह्रास होने लगता है। धर्म के प्रति ग्लानि होने लगती है। दण्ड का बढ़ता प्रभाव धर्म के लिए हानिकारक है।

राज्य बड़ा या मानस

राज्य की शक्ति और क्षेत्र को मर्यादित रखना ठीक है। यदि यह अमर्यादित हुए तो सम्पूर्ण जनता राज्यमुखापेक्षी बन जाती है। राज्य पर आश्रित होता समाज, कर्तव्य भावना के स्थान पर आसक्ति (मोह-ग्रस्त) में फंस जाता है। अपने सभी कर्त्तव्यों को भूलजाने पर धर्म की हानि ही होगी। कर्तव्य भावना के साथ जीवन की पूर्णता के लिए हमें धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों को अपनाने वाले समाज की परिकल्पना करना चाहिए ताकि सभी के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का विकास सम्यक् रूप से हो सके। यही पूर्ण मानव की, एकात्म मानव की कल्पना है जो हमारा आध्यात्म तथा आराधना का साधन दोनों ही है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के उपर्युक्त विचारों से यह स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि वे भारतीय (स्वदेशी) शिक्षा पद्धति, भारतीय संस्कृति, अर्थनीति, राजनीति, धार्मिक प्रतिबद्धताओं, मानवतावादी दृष्टिकोण, संवैधानिक पहलुओं एवं अन्य ज्ञात-अज्ञात विविध विषयों के कुशल नियामक हैं। शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में बदलाव के समर्थकों एवं शिक्षाविद्ों को चाहिए कि पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के विचारों से सहमत होकर, भविष्य के लिए नूतन रीति-नीति एवं नवीन शिक्षा-नीति का प्रारूप तैयार करें।

संदर्भ

उपाध्याय दीनदयाल (2004) एकात्म मानववाद, नोएडा, जाग्रति प्रकाशन।

मध्यप्रदेश संदेश (सितम्बर 2009) पं. दीनदयाल उपाध्याय की प्रेरक उपलब्धियां, जनसंपर्क विभाग म.प्र. शासन भोपाल।

मध्यप्रदेश संदेश (सितम्बर 2014) पं. दीनदयाल उपाध्याय विशेषांक, जनसंपर्क विभाग म.प्र. शासन भोपाल।

राजस्वी एम.आई. (2013) पंड़ित दीनदयाल उपाध्याय, मनोज पब्लिकेशन, दरीबॉ कलाँ, चाँदनी चौक, दिल्ली-6।